धृति क्षमा दमोस्तेयं शौचं इन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

Regd. No. 58414/94

स्वामी रामानन्द जी द्वारा संचालित

हमारी साधना

त्रैमासिक

वर्ष 33 • अंक 3 • जुलाई–सितम्बर 2026

मूल्य रु. 25/–

श्रीगुर पद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिब्य दृष्टि हियँ होती॥

करुणामयी सुमित्रा माँ

हमारी साधना

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्।।
न त्वहं कामये राज्यम्, न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां, प्राणिनामार्ति नाशनम्।।

वर्ष : 33 जुलाई–सितम्बर 2026 अंक : 3

भजन

ऐसे हरि पै हौं बलिहारी।
भगत भीर लखि धीर न लावत धावत बिनुहिं सवारी।
संकट सकल निवारि निमिष महँ अभय करत भय टारी।।
प्रनत पाय परिहरत न कबहुँ राखत सरन सम्हारी।
पूरन करत कामना मन की सब अपराध बिसारी।।
जन कहँ कछु अदेय नहिं राखत सुलभ करत निधि सारी।
पुनि निज धाम देत जेहि जाँचत सुर नर सब तनुधारी।।
आरत के अति हितू दीन के दानि पिता महतारी।
रामसरन सम अधमन हूं की बूड़त नाव उबारी।।

भजन संख्या 18 — स्व. श्री सूर्यप्रसाद शुक्ल जी 'रामसरन'

प्रकाशक
साधना परिवार
स्वामी रामानन्द साधना धाम,
संन्यास रोड, कनखल,
हरिद्वार–249408
फोन: 01334–311821
मोबाइल: 08273494285

सम्पादिका
श्रीमती रमना सेखड़ी
995, शिवाजी स्ट्रीट,
आर्य समाज रोड
करोल बाग,
नई दिल्ली–110005
मोबाइल: 09711499298

उप-सम्पादक
श्री रमेश चन्द्र गुप्त 'विनीत'
1018, महागुन मैंशन–1,
इन्दिरापुरम,
गाजियाबाद–201014
ई–मेल: rcgupta1018@gmail.com
मोबाइल: 09818385001

विषय सूची

क्र.सं.	विषय	रचयिता	पृ.सं.
1.	चित्र – करुणामयी सुमित्रा माँ		2
2.	भजन	स्व. श्री सूर्यप्रसाद शुक्ल जी 'रामसरन'	3
3.	सम्पादकीय		5
4.	भजन – खोलो दया का द्वार		6
5.	भजन – जगत में कोई नहीं तेरा रे		6
6.	भजन – गुरुदेव मेरे दाता मुझको ऐसा वर दो		7
7.	भजन – ग़म ना करा		7
8.	गीता विमर्श – धारावाहिक	स्वामी रामानन्द जी	8–12
9.	मानव जीवन का लक्ष्य	स्वामी रामदास	12
10.	गुरु वाणी – धारावाहिक		13
11.	Letters to Seekers – धारावाहिक		14–16
12.	भागवत के मोती – धारावाहिक		17
13.	श्री गुरु पूर्णिमा साधना शिविर-2026, हरिद्वार का विवरण तथा प्रवचन सार		18–22
14.	श्री गुरु पूर्णिमा साधना शिविर-2026, गाजियाबाद का विवरण		23
15.	श्री गुरु पूर्णिमा साधना शिविर-2026, दिगोली का विवरण		24
16.	बाल साधना शिविर-2026 का विवरण		24
17.	मेरी कार्य पद्धति	स्वामी रामानन्द जी (संकलन जयनारायण पारीक)	25–28
18.	बेईमान की दुर्दशा	हरि प्रकाश सिंह चौहान	29
19.	चिन्तन	रमेश चन्द्र गुप्त 'विनीत'	30–31
20.	सत्संग से पाइए सच्चा सुख	स्वामी अवधेशानन्द गिरि	32–33
21.	गीता-श्रवण का अद्‌भुत प्रभाव, अमोघ फल	श्री छगनलाल जी शास्त्री	33–34
22.	जीवन से भागना नहीं, जागृत होना है आध्यात्मिकता	मयंक मुरारी	35
23.	दानदाताओं की सूची		36–37
24.	शोक समाचार		38
25.	चेतावनी	श्रद्धेय श्री जयदयालजी गोयन्दका (सेठजी)	38
26.	आगामी कार्यक्रमों की सूचना		39
27.	श्री स्वामी रामानन्द जी साधना साहित्य		40

सम्पादकीय

हमारी साधना के सभी पाठकों को सम्पादक मण्डल का अभिनन्दन!

वर्ष 2026 की तीसरी तिमाही की पत्रिका डिजिटल परिवेश में आपके हाथों में है।

आदिगुरु शंकराचार्य जी ने कहा है –

क्षमामण्डले भूपभूपालवृन्दैः सदा सेवितं यस्य पादारविंदम्।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरङ्घ्रिपद्मे ततः किं ततः किं ततः किं ततः किं॥

अर्थात् जिन महानुभाव के चरण कमल पृथ्वी-मण्डल के राजा-महाराजाओं से नित्य पूजित होते हों, किन्तु उनका मन यदि गुरु के श्री चरणों में आसक्त न हो तो इन सभी सद्भाग्य का कोई महत्त्व नहीं होता है।

आशय स्पष्ट है कि कोई कितनी भी ऊँची पदवी प्राप्त कर ले अथवा कितना भी ऐश्वर्यशाली हो, यदि वह गुरु के श्री चरणों में आसक्त न हो तो सभी कुछ महत्वहीन है। हमारे गुरु महाराज स्थूल रूप से हमारे बीच न होते हुए भी सूक्ष्म रूप में अपने साहित्य के माध्यम से हमारा मार्गदर्शन करते रहते हैं। हम सभी साधकों का यह पावन कर्तव्य है कि हम प्रतिदिन गुरुदेव के साहित्य अध्ययन करें और उनकी शिक्षाओं का अनुपालन करें। सदैव याद रखें वे मन्त्र जो हमारी साधना का आधार हैं – सेवा, प्रेम, सत्संग, समर्पण, साधना, सत्य, सुमिरण।

याद रखें – पूज्य गुरु महाराज ने कहा है कि प्रातः और सायं के मौन जाप के अतिरिक्त गीता व रामायण का अध्ययन भी नित्य करना आवश्यक है।

इस तिमाही में गुरु पूर्णिमा के अवसर पर जहाँ भी आयोजन किये गये उन सभी का विवरण इस पत्रिका में देखने को मिलेगा।

कृपया अपनी रचनायें मुख्य सम्पादक अथवा उपसम्पादक को ई-मेल या वाट्सएप द्वारा प्रेषित करें।

श्री गुरु महाराज की कृपा आप सब पर अनवरत बरसती रहे।

खोलो दया का द्वार

खोलो दया का द्वार प्रभु जी अब खोलो दया का द्वार।
कई जन्मों से भटक रहा हूँ मत करना इनकार
प्रभु जी अब खोलो दया का द्वार।।

तू ही मेरा इष्ट है भगवन् मैं हूँ तेरा पुजारी।
तेरा मेरा साथ पुराना तू दाता मैं भिखारी।।
प्यार की भिक्षा डाल दो अब तो खड़ा मैं झोली पसार
प्रभु जी अब खोलो दया का द्वार।।

जहाँ गया सबने दुत्कारा कोई नहीं है मेरा।
तुम ना मुझे ठुकराना प्रभुजी पतित हूँ फिर भी हूँ तेरा।।
या कह दो पतितों का तुमने किया नहीं उद्धार
प्रभु जी अब खोलो दया का द्वार।।

नैया भंवर में डूब रही है दूर बहुत है किनारा।
तुम हो दया के सागर प्रभु जी दे दो अब तो सहारा।।
शरण तेरी मैं आन पड़ा अब सुन लो करुण पुकार
प्रभु जी अब खोलो दया का द्वार।।

खोलो दया का द्वार प्रभु जी अब खोलो दया का द्वार।
खोलो दया का द्वार प्रभु जी अब खोलो दया का द्वार।

❖ ❖ ❖

जगत में कोई नहीं तेरा रे

जगत में कोई नहीं तेरा रे, कोई नहीं तेरा रे।
छोड़ वृथा अभिमान त्याग दे मेरा मेरा रे।
जगत में कोई नहीं तेरा रे, कोई नहीं तेरा रे।

काल करम बस जग सराय में कीन्हा डेरा रे।
इस सराय के सभी मुसाफिर रैन बसेरा रे।
जगत में कोई नहीं तेरा रे, कोई नहीं तेरा रे।

जिस तन को तू सदा सँवारे साँझ सवेरा रे।
इक दिन मरघट पड़ा भस्म का होकर ढेरा रे।
जगत में कोई नहीं तेरा रे, कोई नहीं तेरा रे।

मात पिता भ्राता सुत बांधव नारी चेरा रे।
अन्त न होय सहाय काल जब देवे घेरा रे।
जगत में कोई नहीं तेरा रे, कोई नहीं तेरा रे।

जग का सारा भोग सदा कारण दु:ख केरा रे।
भज मन हरि का नाम पार हो भव का बेड़ा रे।
जगत में कोई नहीं तेरा रे, कोई नहीं तेरा रे।

❖ ❖ ❖

गुरुदेव मेरे दाता मुझको ऐसा वर दो

गुरुदेव मेरे दाता मुझको ऐसा वर दो।
सेवा सुमिरन सत्संग झोली में मेरी भर दो।।

नफ़रत जो करे हमसे हम उससे प्यार करें।
जो चाहे हमारा बुरा उसका सत्कार करें।।
नफरत को मिटा करके तुम प्यार का रंग भर दो।
सेवा सुमिरन सत्संग झोली में मेरी भर दो।।

मेरे मन के मंदिर में सद्‌गुरु तुम बस जाओ।
जिस ओर भी मैं देखूँ बस तुम ही नज़र आओ।।
दे राम नाम अमृत जीवन को अमर कर दो।
सेवा सुमिरन सत्संग झोली में मेरी भर दो।।

इस दुःख भरी दुनिया में बस तेरा सहारा है।
सच कहता हूँ गुरुवर तू प्राणों से प्यारा है।।
इस नीरस जीवन में तुम प्यार का रस भर दो।
सेवा सुमिरन सत्संग झोली में मेरी भर दो।।

सेवा हो शबरी सी और प्रेम हो मीरा सा।
श्रद्धा हो तुलसी सी और बोल कबीरा सा।।
बस इतनी तमन्ना है सद्‌गुरु पूरी कर दो।
सेवा सुमिरन सत्संग झोली में मेरी भर दो।।

गुरुदेव मेरे दाता मुझको ऐसा वर दो।
सेवा सुमिरन सत्संग झोली में मेरी भर दो।।

❖ ❖ ❖

ग़म ना करो

ग़म ना करो गर दुनिया में काँटों का हार मिला।
शुक्र करो हर पल तुमको प्रभु का आधार मिला।।

ग्रह नक्षत्र सितारे बादल बनकर छाते हैं।
करनी के बीजों पर अपना जल बरसाते हैं।।
सुख दुःख अपने कर्मों का तुमको उपहार मिला।
शुक्र करो हर पल तुमको प्रभु का आधार मिला।।
ग़म ना करो .....

बिखर गया गर सपना तो तू उसका ग़म ना कर।
सपनों की इस दुनिया में अपनों का दम ना भर।
एक प्रभु सच है सबको जीवन का सार मिला।
शुक्र करो हर पल तुमको प्रभु का आधार मिला।।
ग़म ना करो .....

आशाएँ मन में रखना तो कोई दोष नहीं।
बात न बन पाए तो प्यारे खोना होश नहीं।।
कौन यहाँ ऐसा है जिसको सब संसार मिला।
शुक्र करो हर पल तुमको प्रभु का आधार मिला।।
ग़म ना करो .....

❖ ❖ ❖

गीता विमर्श

अध्याय 6

(गतांक से आगे)

इस पर अर्जुन भगवान् से प्रश्न करते हैं –

अर्जुन उवाच

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन।
एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिराम्॥33॥
चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥34॥

अर्जुन बोला –

'हे मधुसूदन! साम्य के द्वारा (सिद्ध होने वाले) जो इस योग का आपने वर्णन किया है, चंचलता के कारण मैं इसकी स्थिति की स्थिरता को नहीं देखता हूँ'॥33॥

'हे कृष्ण! मन तो निश्चय ही बहुत चञ्चल है और बड़ा उत्पाती है। इसको बांधना तो मैं वायु को बांधने के समान कठिन समझता हूँ'॥34॥

भगवान् ने आत्म-संयम-योग का वर्णन किया है। अर्जुन ने इसकी ओर लक्ष्य करके कहा, 'जो यह योग तुमने साम्य के द्वारा कहा', अर्थात् साम्य से सिद्ध होने वाला कहा, चित्त की समता पर, सन्तुलन पर, समाहित होने पर ही तो इस संयम-योग की सिद्धि निर्भर करती है। संयम करते-करते जब चित्त सम होता है तभी तो ऊँची चेतना की जागृति सम्भव होती है। इसलिये अर्जुन ने इसे 'साम्य से सिद्ध होने वाला' कहा है। अर्जुन ने कहा – 'मैं इस योग की स्थिर-स्थिति को नहीं देखता हूँ'। कभी टिकने वाली स्थिरता मन में आ सकती है यह तो मेरी कल्पना में भी नहीं आता। कभी भूले-भटके मन निश्चल हो जाये, यह तो सोच सकता हूँ परन्तु वह निश्चल बना रहे, जैसा आपने ऊपर कहा है, वह तो मैं सोच भी नहीं सकता।

अर्जुन रजोगुण प्रधान व्यक्ति था। कर्म करना जानता था। आज तक वह अन्तर्मुख न हुआ था। जब कभी चेष्टा की होगी, सन्ध्या-वन्दन आदि में विफल हुआ होगा। अतः वह आन्तरिक स्थिरता से नितान्त अनभिज्ञ था। इसलिये उसने ऐसा कहा।

आगामी (34वें) श्लोक में कारण स्पष्ट कहा।

मन चञ्चल है, प्रमाथी है, उत्पात करता है, मथ डालता है, झकझोर डालता है, बलवान् है और ज़िद्दी है। बलवान् और अपने स्वभाव में दृढ़ होने के कारण इसे काबू में करना कठिन है। जैसे वायु को बांधना कठिन है, ऐसे ही।

चञ्चलता मन का स्वभाव है। जो एक ही ठौर न टिके वह चञ्चल होता है। मन भी बन्दर की तरह नाचता है। एक पल में कहाँ से कहाँ जाता है। एक ही ठौर इसे टिकाये रखना कठिन है। प्रमाथी क्योंकर है? निम्न प्रकृति का क्रीड़ास्थल बना होने के कारण व्यक्ति को परेशान करता है। कभी इच्छाओं की आंधी आती है और व्यक्ति को झकझोर जाती है, कभी भीतर से विकारों के वेग परेशान कर देते हैं। चैन नहीं लेने देता।

बलवान् है। इसे पकड़ने की चेष्टा से ही इसके बल का परिचय मिलता है और इसकी दृढ़ता का भी। जितनी बलवती निम्न प्रकृति है और जितनी दृढ़ वह है, उतना ही बलवान् और दृढ़ मन है। विकास-क्रम में निम्न प्रकृति के क्षीण होने के साथ ही इसकी दृढ़ता और बल समाप्त हो जाते हैं। वायु का उदाहरण दिया है! वायु को बांधने का प्रयत्न असफल हो जाता है। यदि मकान में हवा के आने का मार्ग हो और जाने का मार्ग न हो तो मकान

की छत उड़ जाने की या दीवार के टूट जाने की सम्भावना होती है। वायु बली है, वह बन्धनों को तोड़ देता है। ऐसा ही मन भी है।

मधुसूदन – मधु दैत्य को मारने वाले। कृष्ण-आकर्षण करने वाले। दोनों सम्बोधन बहुत उपयुक्त हैं प्रसंग के।

इस पर भगवान् ने उत्तर दिया।

श्री भगवानुवाच

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥35॥

श्री भगवान् बोले –

'हे वीर! इसमें सन्देह नहीं कि मन चञ्चल है और इसका निग्रह कठिन है। परन्तु हे कुन्ती पुत्र! यह अभ्यास और वैराग्य से बांधा जा सकता है'॥35॥

स्वीकार करते हैं भगवान् अर्जुन की बात को। मन चञ्चल है और इसको बांधना कठिन है, यह ठीक है। परन्तु, असम्भव नहीं है, यह काम हो सकता है।

कैसे?

अभ्यास और वैराग्य से। यह प्रामाणिक उपाय हैं मन को बांधने के। अभ्यास है कोशिश, मन को निश्चल करने की चेष्टा। बैठकर इसे साधना। जहाँ-जहाँ से भागे, इसे घेर कर अपने वश में लाना (श्लोक 26)। जैसे नये घोड़े को इक्के-तांगे के लिये चक्कर दे-देकर साधा जाता है, इसी प्रकार से मन को मार-मार कर साधा जाता है। उसके चञ्चलता के संस्कार का प्रतिकार किया जाता है अभ्यास के द्वारा। यह आवश्यक है, इसमें सन्देह नहीं।

दूसरा साधन है वैराग्य। राग आसक्ति को कहते हैं। विराग आसक्ति का अभाव है। वैराग्य विराग का भाव है अर्थात् राग रहित अवस्था। मन की चञ्चलता का कारण आसक्ति है। जहाँ-जहाँ लगाव होता है वहाँ मन खिंचकर जाता है। सांसारिक लगाव कामना बनकर इसे चञ्चल करते हैं। वह भय तथा आशंका की परम्परा को जगाकर भी इसकी चञ्चलता के कारण बनते हैं। वही शोक का कारण बन इसे उद्विग्न करते हैं। अत: कहा लगावों को ही छोड़ो। 'न होगा बाँस न बजेगी बाँसुरी'। लगाव न रहने से मन की चञ्चलता के आधार ही छिन जायेंगे।

कामना के परित्याग के लिये तो ऊपर (24) भी कहा है। आसक्ति तो कामना की माँ है। उसके छूटने से कामना स्वत: जाती है।

मन सहज में अर्थात् बिना प्रयास के निश्चल तभी हो पाता है जब वह विकार-शून्य होता है। रजोगुण ही विकारों का रूप है। वही उसकी चञ्चलता का कारण है। निम्न-प्रकृति रजो-तमोमयी है। उसका संशोधन मन को सहज, निश्चल कर देता है।

'वैराग्य' इस एक शब्द में ही संसार के आकर्षणों से मन को हटाने का निर्देश है। भोगों से हटना होगा। किसी प्रकार की भी बाह्य तृप्ति की मांग से मन को हटाना होगा।

वैराग्य साधना है। प्राय: यह विषमता का रूप ले लेती है। राग के स्थान में द्वेष हो जाता है, कभी भय हो जाता है। बहुधा वह कर्म-विमुखता और हृदय की शुष्कता का रूप धारण कर लेता है। एक सिरे से भागकर व्यक्ति दूसरे सिरे पर पहुँच जाता है। विषयासक्ति से विषय-द्वेष में जा गिरता है। दोनों ही बन्धन हैं। घृणा आसक्ति का ही रूपान्तर है। वास्तव में तो राग तथा द्वेष दोनों से रहित होना होगा। भीतर न पाने की चाह हो, न दूर भागने की।

इस आरोह-पथ की साधना में जैसे छोटे पौधों की बाड़ लगाकर रक्षा करते हैं, ऐसा काम वैराग्य करता है। परन्तु, वैराग्य सम्बन्धी विचार-धारा से जो विषमता होती है उससे हानि होती है अनेकों को और समाज को, उसमें मुझे तनिक सन्देह नहीं प्रतीत होता।

दमन होता है संस्कारों का। जीवन से उत्साह निकल जाता है। जिनके विकास की मांग कर्म-

परायणता है, वह अकर्मण्य हो जाते हैं। अध्यात्म का अर्थ नैराश्य, जीवन में पलायन समझा जाने लगता है। यह सभी अवांच्छित है। आवश्यकता है जीवन के प्रति एक सन्तुलित दृष्टिकोण की जो जीवन तथा अध्यात्म को एक दृष्टि से देखना सिखाये। जिससे जीवन में अध्यात्म को पाया जा सके और अध्यात्म जीवन को उठा सके।

सच्चा वैराग्य तो घृणा पर आश्रित नहीं होता। वह वस्तुओं के वास्तविक मूल्यों की अवहेलना पर स्थित नहीं होता। वह जीवन में जो मानव आदर्श है, जो मानवता है उसके हनन पर नहीं टिकता। वह शिवं तथा सुन्दरम् के मिथ्यात्व के प्रतिपादन पर निर्भर नहीं करता। सच्चा वैराग्य सम्यक्-बोध पर निर्भर करता है। सभी वस्तुओं की कीमत है, सभी के लिये स्थान है इस रचना में, जो उस स्थान को जान लेता है, वह आसक्ति से, आकर्षण बन्धन से छूट जाता है। जो पैसे की ठीक कीमत समझता है, वह लोभ से अभिभूत नहीं होता। जो वास्तविक मूल्य से उसका अधिक मूल्य लगाता है वह लोभी बनता है। जो उसका अवमूल्यन करता है, वह तिरस्कार करता है पैसे का। वह भी परोक्ष रूप से बंधा है। उसे सत्य को किसी दिन जानना होगा। विज्ञान है सत्य को पहिचानने का रास्ता, और उससे व्यक्ति आसक्ति से मुक्त होता है। फिर न राग रहता है न द्वेष, फिर न कामना रहती है न भय। फिर समता होती है।

जो विकास की जिस स्थिति में है उसे उस स्थिति को स्वीकार करके उस स्थिति के अनुरूप अनुभवों को करते हुए आगे बढ़ने के लिये तैयार रहना चाहिए, यही सौम्य मार्ग है अध्यात्म का। दूसरे की स्थिति का अनुकरण सत्य का हनन है।

ऐसा सत्याश्रित वैराग्य परम शान्ति तथा परम सौम्यता का कारण होता है। वह बच्चेपन-वाला वैराग्य जिसमें 'स्त्री मांसास्थिमज्जामलमूत्र का पिण्ड मात्र है', जिसमें 'पैसा मिट्टी है', जिसमें 'शिक्षा मूर्खता है', वह आवेश है, वह आवेग है। आँखे खुलने पर नहीं रहता। यह धोखा देता है।

मिथ्यात्व की चर्चा पर आश्रित वैराग्य मुझे तो जीवन का हनन ही दीखता है। विकासकारिणी लीला का तिरस्कार भासता है। उस पर टिका रह पाता है कोई विरला ही। तोतापुरी की कथा का स्मरण हो आता है ऐसे अवसर पर जो ठाकुर रामकृष्ण परमहंस के जीवन में पढ़ने को मिल सकती है आपको।

एक और वैराग्य का मार्ग है, वह भक्तों का मार्ग है। वह प्रभु के चरणों की रति के आश्रित है। जितना वह प्रेम जगता है, दूसरी ओर से चित्त उतना ही हटता है। वह प्यार तो सभी आसक्तियों को भस्म कर देता है। साधक को अनन्य कर देता है और निर्मल कर देता है।

पर, वह बिना वैराग्य के जगेगा कैसे? भक्तों का जीवन बताता है वह कैसे जगता है। भीतर मांग हो और सन्तकृपा का योग हो, बस। कैसे जगा था महाप्रभु में? कैसे जगा था दादू में? कैसे जगा था सूर और तुलसी में? वास्तव में यह अनुराग रागियों में अच्छा जगता है। वैराग्य की चर्चा से नीरस हुए, शुष्क हुए, निर्जीव हुए, तपस्वी राग-रहित तो हो जाते हैं पर उनमें प्रेम की सम्भावना भी लुप्त-प्राय: हो जाती है। अत:, वहाँ यह राग और तदाश्रित परम वैराग्य कठिनता से जगता है।

वैराग्य का परमस्वरूप है योगदर्शन के अनुसार वशीकार। जब प्रकृति पर अर्थात् भीतर पूरा अधिकार हो जाता है तब वैराग्य की पराकाष्ठा होती है। अस्तु।

अभ्यास और वैराग्य से मन को बांधा जाता है। केवल अभ्यास के आश्रित स्थिरता अस्थिर होती है। वैराग्य की निर्मलता और दृढ़ता पर आश्रित उसी के अनुसार स्थिर होती है।

यह उपाय है। इन उपायों से मन को पकड़ा जाता है। पकड़े जाने पर जग जाती है ज्ञानाग्नि जो विकारों को भस्म कर देती है। फिर समता स्थिर

हो जाती है।

इसी विषय में भगवान् कहते हैं –

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः॥36॥

'जिसने अपने को काबू में नहीं किया है, उसके लिये (यह) योग प्राप्त होना कठिन है।, ऐसी मेरी मति है। परन्तु जिसने अपने को वश में किया है वह उपाय से यत्न करता हुआ इसे पा सकता है'॥36॥

संयम आधार है इस योग में सिद्धि का। जिसने अपने को वश में नहीं किया है वह उसे नहीं पा सकता। जिसने वश में किया है वह पा सकता है।

संयम के साथ ढंग से प्रयत्न आवश्यक है। केवलमात्र संयम ही काफी नहीं, यद्यपि वह अनिवार्य रूप से आवश्यक है।

उपाय जानना होगा। जानकार लोग उपाय बताते हैं, साधना का मार्ग देते हैं। फिर यत्न करना होगा। पुरुषार्थ के बिना उपाय भी बेकार है। बिना संयम के उपाय तथा पुरुषार्थ दोनों ही व्यर्थ हो जायेंगे।

यह जो साधना का क्रम कहा है, इसमें संयम का कितना महत्त्व है यह समझ लेना चाहिए। विवेकपूर्वक धैर्य से अपनी स्थिति को समझते हुए मन, बुद्धि आदि की गतियों को समझते हुए, संकल्प के बल पर संयम होता है। अपने से माँग करनी होती है, व्यवहार का नया ढांचा सामने रखना होता है, कल्पना तथा संकल्प-बल बरतना होता है, आत्मविश्वास रखना होता है, फिर सधता है संयम। सधता अवश्य है। संयम का एक विज्ञान है, कला है, वह जाननी होती है। वह सीखनी होती है।

अर्जुन ने अपने को इस साधना के बिलकुल अयोग्य समझा था। वह बात ठीक ही थी।

इतनी कठिन साधना में रपट पड़ना कोई विस्मय की बात नहीं। संयम ढीला पड़ते ही व्यक्ति धड़ाम से पृथ्वी पर आ जाता है। अर्जुन को इस विषय में जिज्ञासा हुई और उसने प्रश्न कर दिया।

अर्जुन उवाच

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति॥37॥
कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि॥38॥
एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते॥39॥

अर्जुन बोला –

'जो संयम से रहित, परन्तु श्रद्धा से युक्त व्यक्ति है, जिसका चित्त योग से चलायमान हो गया है, वह योग-संसिद्धि को न पाकर हे कृष्ण! किस गति को पाता है?'॥37॥

'क्या वह दोनों ओर से भटका हुआ, छिन्न-भिन्न हुए बादल की तरह नष्ट हो जाता है? हे वीर! वह जिसके कदम जमे नहीं हैं, जो ब्रह्म के रास्ते में भटक गया है'॥38॥

'हे कृष्ण! मेरे इस संशय को पूरी तरह से दूर कर दो। तेरे सिवाय इस संशय को दूर करने वाला मुझे दूसरा नहीं दीखता है'॥39॥

भगवान् ने कहा था असंयमी इस योग को नहीं पा सकता। सो अर्जुन ने पूछा, 'असंयमी की क्या गति होती है?'

श्रद्धा होती है, योग-सिद्धि लाभ करने की चाह भी होती है। साधन में प्रवेश कर जाते हैं ऐसे व्यक्ति। परन्तु जो साधन की मांग होती है उसे पूरा नहीं कर पाते, अतः प्रगति नहीं होती। यह तो बहुधा देखने में आता है।

दूसरा, श्रद्धा होती है, संयम भी होता है। वेग से आगे बढ़ते हैं। बढ़ते-बढ़ते एक अवस्था आती है जब भीतर के विकार अतिप्राबल्य के कारण दबाये नहीं रह सकते। संयम की बाड़ टूट जाती है। निम्नप्रकृति प्रबल हो जाती है। व्यक्ति बह जाता है। सारी साधना समाप्त हो जाती है। भीतर की स्थिरता भी समाप्त हो जाती है।

ऐसे व्यक्ति के विषय में जिज्ञासा है। क्या गति होती है मर कर ऐसे मनुष्य की? इस जीवन में तो

वह व्यक्ति भटक गया है।

ऐसा क्यों होता है, यह ऊपर कहा है। व्यक्ति के भीतर सुप्त चेतना में कितनी प्रबल वासनायें छिपी हैं, इसका उसे भी भान नहीं होता। योग-सिद्धि तो निर्मलता की मांग करती है। अतः संस्कारों का क्षय होना होता है। प्रबल संस्कार तो स्थूल में प्रकट होते हैं, वह बहा ले जाते हैं। व्यक्ति के विवेक का बल हार जाता है जब अतिप्रबल आँधी आती है। व्यक्ति बह जाता है रास्ता छोड़कर।

अपनी आशंका को भी व्यक्त कर दिया अर्जुन ने।

क्या वह विकास को लाभ करता है? क्या उसकी दुर्गति होती है? क्या वह विकास-क्रम में नीचे की ओर ढकेल दिया जाता है? उदाहरण देते हैं – **'छिन्नाभ्रमिव'** – टूटे हुए बादल के समान। बड़ा सा बादल आता है, तेज़ धूप पड़ती है। उसके टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। फिर वह भी क्रमशः विलीन हो जाते हैं। बादल का देखने में कुछ भी बाकी नहीं रहता। क्या उस योग-भ्रष्ट की ऐसी दशा होती है।

वह उभयभ्रष्ट है। न माया मिली न राम। सांसारिक लोग तो सांसारिक भोगों को लाभ करते हैं। दत्तचित्त होकर भोगते हैं। वह तो भोगों को भोगता हुआ भी उनकी भाँति भोग नहीं सकता। रस नहीं ले पाता। दूसरा, उसने अपनी शक्ति और संयम को तो साधन में लगाया। भोगने का अवसर ही खो दिया और साधना में भी सफलता मिली नहीं।

'अप्रतिष्ठः' – जिसे टिकने को स्थान नहीं मिला। रास्ते पर उसके पांव जमे नहीं। वह तो उखड़ गया है। ब्रह्म के रास्ते पर वह भटक गया है। जाना किधर को था, चल दिया है किधर को। वह उलटा संसार की ओर मुंह करके चलने लगा है।

अर्जुन को उस संशय ने चलायमान कर दिया था। वह बहुत उत्सुक हो उठा था इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिये। भगवान् कृष्ण के अतिरिक्त किस दूसरे को ढूँढता जो निश्चयात्मक रूप से उत्तर दे सकता इस प्रश्न का। कृष्ण तो योगेश्वर थे। वह इन गतियों को खूब समझते थे। अर्जुन उन्हें कुछ-कुछ पहचानने लगा था।

'न उपपद्यते' – प्राप्त नहीं किया जाता है। दीखता नहीं है।

'अशेषतः' – पूर्णरूपेण। भली प्रकार से समझा करके संशय को मिटा देने वाला व्यक्ति नहीं मिल सकता।

(क्रमशः)

मानव जीवन का लक्ष्य

जीवन लम्बा नहीं है। परमात्मा के अन्दर रहकर इसका लाभ उठाना चाहिए। जो भी दिन गुजरता है वह आपको अन्त के निकट ले जाता है। तब आपको इस संसार से जाना होगा और हर उस वस्तु को जिसे आप अपना समझ कर सीने से लगाते हैं, पीछे छोड़ना होगा। परमात्मा का विचार करके जीवन व्यतीत करना वास्तविक आनन्द एवं शान्ति का जीवन होता है। शेष तो दुःख की उस शृंखला को लम्बा करना है जो आपको अन्त में मृत्यु के भयानक मुख में घसीट ले जाती है।

मानव जीवन का एकमात्र उद्देश्य शाश्वत आनन्द का उपभोग है। मानव का बड़प्पन, मुरझाने वाले यश में नहीं है; न सांसारिक धन की प्राप्ति में है; न ही भोग-विलास में। मनुष्य मानवता से ऊपर उठ सकता है, उसे अमर कीर्ति प्राप्त हो सकती है। धन, नाम और मान के दास नहीं बनिए। सभी ऐहिक योग्यतायें तथा सम्पत्तियाँ चली जाती हैं। परमात्मा को अपना ध्येय एवं लक्ष्य बनाइये। आप उनके साथ एक हैं। इसको जानिये और वास्तविक सुख एवं शान्ति प्राप्त कीजिये।

– स्वामी रामदास

गुरु वाणी

मैं समाज तथा सामाजिक जीवन को आध्यात्मिक साधना के लिये अनिवार्य रूप से आवश्यक समझता हूँ। एकांगी साधना अथवा वह साधन जो कि व्यक्ति के विकास को एकांगी कर देता है मुझे पसन्द नहीं है।

कैम्पों को मैंने एक बहुत उपयोगी साधन प्रतीत किया है। और मैं उनको अधिकाधिक उपयोगी बनाना भी चाहता हूँ।

कैम्प की खामियों और विशेषताओं को मैंने प्रतीत किया है, खामियों की प्रतीति करते हुए भी और उनको दूर करने की क्षमता होते हुए भी अभी उनको सहन करना ही आवश्यक प्रतीत होता है। (पत्र 97)

❖ ❖ ❖

आज्ञाकारिता को मैं प्रथम स्थान नहीं देता हूँ क्योंकि मैं इसके खतरे को समझता हूँ। यह प्रेम के द्वारा, आन्तरिक भावना द्वारा तथा स्व-बोध के द्वारा ही प्रेरित हो। (पत्र 97)

❖ ❖ ❖

ज्यों-ज्यों चेतना ऊँचे-ऊँचे केन्द्रों में क्रियाशील होती है व्यक्ति का जीवन स्वयं बदलता जाता है, और विचार भी। अड़चन होती है स्वभाव से। मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ पुराने रास्ते चलना चाहती हैं। जो व्यक्ति परिवर्तन के लिये उद्यत हो जाता है, और रहता है वह जल्दी बदलता है अन्यथा देरी लगती है। अत: प्रत्येक क्षेत्र की आसक्ति से ऊपर उठ जाने की अभीप्सा रहनी चाहिए। (पत्र 97)

❖ ❖ ❖

दूसरों की बातों को शान्तिपूर्वक सुनना, उसमें ग्राह्य को ग्रहण करना, उसके पीछे जो ज्ञान है उसकी सीमाओं को मापना और हँस देना, अनसुना कर देना - जहाँ वह अग्राह्य है, यह कला सीखनी होगी। (पत्र 100)

❖ ❖ ❖

एक बार रख तो दो अपनी सभी मान्यताओं को, सेवाकांक्षाओं को माँ के चरणों पर और अन्तरात्मा से पुकार उठो "माँ तू जो करना चाहे कर दे, मैं अब तेरा", आकाश निर्मल हो जायेगा। भीतर शान्ति हो जायेगी और बाहर भी पथ सूझेगा। (पत्र 100)

❖ ❖ ❖

Letters to Seekers

Letter No. 31 : Shri Ram : Fatehgarh,
Dist. Farukhabad.
16.02.1945

My dear ......,

I got your letter of the 11th February when I had already written to you my previous letter. I am pleased to learn that you are going ahead with Akhanda Japas with added enthusiasm.

There is no gain saying the fact that there are various consciousnesses beyond the so called intellection but we must understand the statement well. That consciousness is a big stretch from the all conscious transcendental to the unconscious (of the modern psychology) is an admitted fact. It functions variously at various planes, though all this work is simultaneous. At the so called conscious level it 'feels', 'knows' and 'wills' as it does in an ordinary man. As we pass above, three functions merge into one – which may be called intuition or *buddhi,* and this is a long stretch, seems to have its beginnings in the cosmic mind which is *mahat* according to the Sankhya School. It is more ideation, the subject object relationship merging into one and the knowledge in this consciousness is called Samadhi-jnana. He who consciously works at this level – that is who can link up the waking conscious to it, becomes all knowing. Beyond it we pass into Mulaprakriti where all this is but, as if it were not. It is a consciousness of a big negation, for the sun is not visible yet whereas the moon and stars have set. The transcendental consciousness, which is the life of this all, has not dawned, whereas all this universe has passed into nothingness. Certain schools of Yoga have called this 'Shunya' and it is alleged by some that Buddha reached this consciousness and declared it as final. From this we emerge into the consciousness of the Absolute Light which is more than a negation. This is the Transcendental – the Purushottam, the *Saguna-Nirguna* of the saints. It is *saguna* for all the *gunas* come out of it. It is *Nirguna* because no single *guna* can be so ascribed to it in exclusion of all this by the same fact. The light is colourless *(nirguna)* yet all colours *(gunas)* come out of it *(saguna)*

The ultimate escapes all descriptions. Even intuition is at rest in it. Buddhi merges in the *avyakta-mula-prakriti* which itself lies merged into a sort of nothingness in the Purushottama. Under these circumstances all descriptions – all accounts must begin from a much lower level. All viewpoints must be from somewhere in Prakriti and in their structure limited by this vision.

Now, I say there are two probabilities: the Sadhaka has actually stopped short on the way and gives the account of that consciousness, or the Sadhaka has actually reached the transcendental consciousness but he assumes a point of view and says what he does. The point of view that he has must of necessity have the limitations of his evolution. To a *bhakta,* the ultimate comes forth as a person, and to one who is merely impersonal, he comes forth as an absolute impersonality, on the plane of intuition. The cosmic mind seems to be the farthest reach of intuition and here all this is possible. In the Mula-prakriti the consciousness is as if it were not. Now the question is how to know whether a particular saint-philosopher dwells in the highest or not. Inner evolution is the only sure test. If he is fully developed in all his

vehicles upto the *Karana-shareera,* or if his centres are all fully developed, he is perfect; if not, he is not. This only the wise ones can know.

As to the attainments of Lord Buddha, some how I have a conviction that he was a perfected sage. Shanker, to me is more a philosopher than a perfected one.

The philosophies are the production of the intellect in most cases with a backing of intuitional flashes. They always have a stand point, which is their limitation and no philosophy can ever transcend it.

We can say from the practical (and hence also limited) stand point certain things about the ultimate. This is all that is necessary for us to grow into that mighty transcendental consciousness of the *Purushottama*. The urge of evolution, the Grace of the All-conscious which has put us on the path will take us ahead, only if we learn to depend upon Him. Our effort and anxiety will merely produce a tension and temporarily stop or stifle the inflow of His Grace. He who has ever felt the breath of His kindness or the touch of His Grace loses all fear about his stopping short. He no longer walks that he may stop on the way. He rests in that he may stop on the way. He rests in His lap – the lap of the All Knowing, Benign Father whose business is to make him whole and wholly one with Himself. Such fears are only as long as we have not entered into the holy of holies – the inner court of our Lord.

He is the life of our life – our all; we are not without Him. Think of His Grace, and learn to depend upon Him and surrender your whole self, if impossible at present – pray that He may grant it.

May His Grace be upon you.

The accompanying letter is for Mr.... Kindly convey and oblige me.

With blessings and love,

Yours in the Lord,
Ramanand

❖ ❖ ❖

Letter No. 32 : Shri Ram : Fatehgarh,
Farrukhabad.
19.02.1945

My dear ......,

I am in reply to your letter of the 14th. I have already sent the reply to your previous letter. I am sorry to have forgotten to acknowledge the receipt of stamps while at Pilibhit. I thank you very much for the same.

Everybody has his limitations. One who recognises them, but does not make much of them, can make the best of the circumstances, inspite of the limitations in himself or in others. Perfection is yet to be attained by us and by others. We are on the road to it as also others, and therefore existence of limitations is quite natural.

I quite feel that you have attained a great success in your treatment with Kaushal, and am sure you are on the way to it in the case of Sarla. That an adjustment may come in the case of your relationship with your wife, in course of time, is a great probability. Now, do only the little

bit you can do for these souls, and let that rest in God. You have ideals in these matters; it is very good, but yours is only to make an effort for their attainment under the present circumstances. How much success will come depends not upon you alone, but Sarla and Kaushal as well. Do you realize that it is too great an attachment that makes you impatient? That was what I pointed out while at Agra. You have a role to play, Sharmaji, and that is all. There is Providence above which dispenses according to every body's needs. He knows better and provides better.

Dissatisfaction does no good. It harms you and harms others and does not let the best come out of others. The British Govt. feels that it is necessary for them to stay on and interfere because Indians cannot rule themselves. I sense a similar thing in you. If you let the responsibility rest on others, and let them think for themselves then alone it is possible that the sense of responsibility be born in the youngsters and a power of understanding in your colleague. Moreover, do you expect all to become Ram Chandra Sharma? And business? I am sure it will not go to dogs. It will get along well. You have yet to see the God Hidden in others. There should be no hatred, no disdain. If you feel as you do there is no alternative. I have already proposed in the above words; you are free to have your choice. The time seems to have come when this superiority complex needs to be worked out to a finish.

If you can change your outlook, if you can feel that others have a right to blunder and learn (at the common cost, no doubt), if you can realize that your youth was no less irresponsible and if you can feel that you cannot control the destinies of others, but merely put in your mite of service and that too not officiously, I am sure you would have taken a migthy step towards the Lord. Hatred and dissatisfaction will be replaced by sympathy, and kindness, and love shall rein supreme. Remember: if you want to change others (and change yourself), love others intensely. Never, never for once, bring upon your lips words of advice unless sincerely asked for by another and even then do not expect them to be necessarily carried out. Perchance if they prove of any use to others, thank the Lord, that He had made you an instrument of service of a son of His. To attempt to rule others and to guide others of one's own accord, is to hamper others' growth and one's own. But to love others just for love's sake i.e. for Lord's sake that indwells – the Lord who is the life of one's life – for the sake of self-giving, (for self-giving is life and joy) – that one can do. Murmur in the softest recesses of your heart, thinking of others, "My Lord so and so, I love you. I love you, I intensely love you, and will gladly do my bit for your well being," and send forth a current of love. And beg of Him Love Infinite, Love Divine and Love Supreme, and I am sure He will grant it to you.

You are welcome to have a short leave, say a few months and have a change of atmosphere. Then you will be in a position to decide for yourself. The Lord's work is being done at Agra as well. These complexities have to be worked out, if not under the present circumstances, they will be worked out in a new set of circumstances. You are free to make your choice.

My loving remembrances for all there.

May the Lord shower His Grace on you.

Yours in the Lord,
Ramanand

भागवत के मोती

अप्रैल 2023 अंक से पत्रिका में श्रीमद्भागवत के चुने हुए सन्देश छपने आरम्भ हुए हैं। इस अंक में प्रस्तुत है इन सन्देशों की चौदहवीं कड़ी –

70. जो पुरुष दूसरों के स्वभाव और उनके कर्मों की प्रशंसा अथवा निन्दा करते हैं वे शीघ्र ही अपने यथार्थ परमार्थ-साधन से च्युत हो जाते हैं।

– भागवत 11.28.2

71. उद्धवजी! सोने से कंगन, कुण्डल आदि बहुत-से आभूषण बनते हैं; परन्तु जब वे गहने नहीं बने थे, तब भी सोना था और जब नहीं रहेंगे, तब भी सोना ही रहेगा। इसलिये जब बीच में उसके कंगन-कुण्डल आदि अनेकों नाम रखकर व्यवहार करते हैं, तब भी वह सोना ही है। ठीक ऐसे ही जगत का आदि, अन्त और मध्य मैं ही हूँ। वास्तव में मैं ही सत्य तत्त्व हूँ।

– भागवत 11.28.19

72. जैसे वायु आकाश को सुखा नहीं सकती, आग जला नहीं सकती, जल भिगो नहीं सकता, धूल-धुआँ मटमैला नहीं कर सकते और ऋतुओं के गुण गर्मी-सर्दी आदि उसे प्रभावित नहीं कर सकते – क्योंकि ये सब आने-जाने वाले क्षणिक भाव हैं और आकाश इन सबका एकरस अधिष्ठान है – वैसे ही सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण की वृत्तियाँ तथा कर्म अविनाशी आत्मा का स्पर्श नहीं कर पाते; वह तो इनसे सर्वथा परे है। इनके द्वारा तो केवल वही संसार में भटकता है, जो इनमें अहंकार कर बैठता है।

– भागवत 11.28.26

73. उद्धव जी! जीव संस्कार आदि से प्रेरित होकर जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त कर्म में ही लगा रहता है और उनमें इष्ट-अनिष्ट-बुद्धि करके हर्ष-विषाद आदि विकारों को प्राप्त होता रहता है। परन्तु जो तत्त्व का साक्षात्कार कर लेता है, वह प्रकृति में स्थित रहने पर भी, उनमें इष्ट-अनिष्ट-बुद्धि करके हर्ष-विषाद आदि विकारों से युक्त नहीं होता; क्योंकि आनन्दस्वरूप आत्मा के साक्षात्कार से उसकी संसार-सम्बन्धी सभी आशा-तृष्णाएँ पहले ही नष्ट हो चुकी होती हैं।

– भागवत 11.28.30

74. काम-क्रोध आदि विघ्नों को मेरे चिन्तन और नाम-संकीर्तन आदि के द्वारा नष्ट करना चाहिए। तथा पतन की ओर ले जाने वाले दम्भ-मद आदि विघ्नों को धीरे-धीरे महापुरुषों की सेवा के द्वारा दूर कर देना चाहिए।

– भागवत 11.28.40

श्री गुरु पूर्णिमा साधना शिविर–2026, हरिद्वार का विवरण तथा प्रवचन सार

साधना धाम हरिद्वार में गुरु पूर्णिमा शिविर 2026 का शुभारम्भ दिनांक 24 जुलाई 2026 की अपराह्न को ड्यूटियां लगाने से हुआ जिसकी पूर्ति 29 जुलाई प्रात:काल में की गई। इस शिविर में लगभग 185 साधकों ने भाग लिया। प्रतिदिन सायंकाल के सामूहिक जाप से अगले दिन प्रात:काल के सामूहिक जाप तक अखण्ड जाप चलता रहा। दिनांक 26 जुलाई सायंकाल से आरम्भ करके 28 जुलाई 2026 प्रात:काल तक 36 घंटे का अखण्ड जाप किया गया। 29 जुलाई को प्रात:कालीन सामूहिक जाप के पश्चात भण्डारे के साथ बाहर से आये बहुत से साधकों को मार्ग का भोजन देकर विदाई दी गई। कुछ साधक धाम में ही ठहर गये थे क्योंकि अगले दिन से भागवताचार्य सुशील जी मिश्र के श्रीमुख से श्रीमद् भागवत की कथा का आयोजन किया गया था जो दिनांक 5 अगस्त तक चली। भागवत कथा में लगभग 80 श्रोतागण उपस्थित रहे।

प्रवचन सार

बहन रमना सेखड़ी जी

गुरु पूर्णिमा का त्यौहार है। सभी साधक अपने–अपने गुरुओं के पास जायें, आशीर्वाद लें और बाँटें।

श्री गीता जी (4.9) में भगवान् कहते हैं –

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वत:।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

परमात्मा हमें सिखा रहे हैं कि यह गुण सीखो। यदि आप सीखना चाहें तो सीख सकते हैं। प्रभु कहते हैं जैसे मेरे कर्म दिव्य हैं वैसे ही तुम्हारे कर्म भी दिव्य होने चाहिए। प्रभु ने हमको भेजा है लक्ष्य प्राप्त करने के लिये। सब यहीं रह जाता है, केवल अच्छे–बुरे कर्म ही साथ जाते हैं।

हम प्रभु से जुड़ जायें तो योग बन जाता है। मार्ग वो बतायेंगे पर चलना तो हमें ही पड़ेगा। जब हम नाम जप में लगेंगे तो अज्ञान, मोह आदि स्वयं चले जायेंगे। जब भी हम किसी से प्यार करते हैं, वास्तव में प्रभु से ही कर रहे होते हैं – ऐसा भाव रखते हुए दूसरों का हित करते रहें।

जो भी जीवन में घटता है, प्रभु ही घटवा रहे हैं। उपयोग सब करो पर अपना मान कर मत करो। राग सबसे हो, अनुराग प्रभु से हो। कर्म बन्धन का कारण नहीं होते, अपना मानने से बन्धन होता है। मन, वचन, कर्म एक होने चाहिए। कहे कुछ, करे कुछ, ऐसा नहीं होना चाहिए। तन्त्र–मन्त्र कुछ नहीं होता, न उससे लाभ होता है। नाम जप से ही लाभ होता है।

जिस प्रकार प्रभु निर्लिप्त होकर प्यार से कार्य करते हैं उसी प्रकार हमें भी करना चाहिए। फिर जो भोगासक्ति थी वह प्रभु आसक्ति हो जायेगी।

❖ ❖ ❖

हम संसार में जो भी एकत्रित करते हैं, सब यहीं छूट जाता है, पर अध्यात्म में हमारा कुछ भी नहीं छूटता है बल्कि उसके आगे मिलता है, बेकार कुछ नहीं जाता है। हर घड़ी, हर पल अपने प्रभु को पाने का प्रयास करें।

नकारात्मकता नहीं रखनी, गुरु के चरणों में बैठकर अपने को माँजना है। अपने आप को चमकायें। किसी को अपने से नीचा नहीं समझना। जब जीवन में प्रतिकूल परिस्थिति आ जाती है तो वही सरलता से

निकल भी जाती है। दृष्टि बदलनी हैं सृष्टि नहीं।

जितना उच्च कोटि का संस्कार होगा उतना व्यक्ति महान होगा। अपने ऊपर पूरा भरोसा रखना होगा। जिस पर राम की कृपा होगी वही इस मार्ग पर चल पाता है। कर्मयोग में हानि का योग नहीं होता। कर्म-बन्धन कटने लगते हैं। अच्छा सोचना है। जैसे हो वैसे ही भगवान् से जुड़ जाओ। अपना पतन नहीं करना, अपना विकास स्वयं करना है।

❖ ❖ ❖

प्रभु कहते हैं – जैसे मेरे कर्म दिव्य हैं वैसे तुम्हारे कर्म भी दिव्य होने चाहिए। मनुष्य का जन्म तो दिव्य नहीं हो सकता परन्तु उसके कर्म अवश्य दिव्य हो सकते हैं। उसी के लिये तो उसका जन्म हुआ है। कर्मों में दिव्यता योग से आती है। जो कर्म बाँधने वाले होते हैं उनमें दिव्यता आने से वे ही कर्म मुक्ति देने वाले हो जाते हैं। कर्म दिव्य (फलेच्छा, ममता, आसक्ति से रहित) होने पर कर्ता एक तो उन कर्मों से बँधता नहीं, दूसरे वह पुराने कर्मों से भी नहीं बँधता अर्थात् मुक्त हो जाता है। और तीसरे उसके द्वारा होने वाले कर्मों से दूसरों का भी हित स्वत: होता रहता है।

वस्तुओं के साथ अपना सम्बन्ध मानने से अन्त:करण, कर्म और पदार्थ – तीनों ही मलिन हो जाते हैं। विनाशी से माना हुआ सम्बन्ध छूट जाने से तीनों स्वत: पवित्र हो जाते हैं, अत: विनाशी से माना हुआ सम्बन्ध ही मूल बाधा है। प्रभु से सम्बन्ध जुड़ने पर संसार का सम्बन्ध छूट जाता है। संसार का सम्बन्ध छूटने पर पुनर्जन्म नहीं होता अर्थात् मानव जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

वास्तव में कर्म बन्धनकारक नहीं होते। कर्मों में जो बाँधने की शक्ति है वह केवल मनुष्य की अपनी कामना ही है। कामना की पूर्ति के लिये राग-पूर्वक अपने लिये कर्म करने से मनुष्य कर्मों से बँध जाता है। फिर ज्यों-ज्यों कामना बढ़ने लगती है त्यों-त्यों वह पापों में प्रवृत्त होने लगता है। परन्तु जब वह केवल दूसरों की सेवा के लिये निष्काम भाव से कर्म करता है, तब उसके कर्मों में दिव्यता, विलक्षणता आने लगती है। इस प्रकार कामना का सर्वथा नाश होने पर उसके कर्म दिव्य हो जाते हैं अर्थात् बन्धनकारक नहीं होते। फिर उसके पुनर्जन्म का प्रश्न ही नहीं होता।

बहन सुमन जायसवाल जी

गीता के अध्याय 18 के श्लोक 26 में सात्त्विक कर्ता के लक्षण बताते हुए भगवान् कहते हैं कि जो कर्ता आसक्ति से रहित होता है, कभी अहंकार के वचन नहीं बोलता, जो कार्य वह कर रहा है उसके सिद्ध होने से हर्षित नहीं होता है सिद्ध न होने से दु:खी नहीं होता है तथा कार्य करते समय धैर्य और उत्साह से युक्त होता है – वह कर्ता सात्त्विक कर्ता कहा जाता है। आसक्ति से हटने के लिये हर नाते को प्रभु से जोड़ना है, संसार से नाता नहीं जोड़ना है।

अपने अन्दर कोई विशेषता है तो उसे भगवान् की कृपा समझनी चाहिए। प्रत्येक घटना भगवान् का मंगलमय विधान होता है; अनुकूलता प्रतिकूलता आती रहती है। आत्म-चिन्तन करें, भगवान् ने सबको सामर्थ्य दी है। समय को सार्थक बनाना है, राम-नाम जाप करना है।

बहन मिथिलेश जी

कर ते कर्म करो विधि नाना।
मन राखो जहँ कृपा निधाना॥

घर में रहकर ही हम प्रभु को प्राप्त कर सकते हैं। जीवन में जो अनुकूलताएँ-प्रतिकूलताएँ आती है उनमें सम रहना है –

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेषोऽस्ति न प्रिय:। गीता 9.29

जड़ वन पशु से उबारा है जिसने, दिया तन मनुज का कि हो योग उससे। प्रभु हमेशा हमसे जुड़े हुए

हैं। वे कहते हैं कर्म करो, फल की इच्छा न करो। सुबह शाम अवश्य ध्यान करें। जब हम प्रभु का भरोसा करते हैं तभी वो हम पर कृपा करते हैं। अतः निरन्तर राम नाम का जाप करने का अभ्यास डालना चाहिए।

बहन सुनीता दुआ जी

तेरी शरण में आकर हमें जिन्दगी मिली है। हमारे कर्म दिव्य कैसे बनें। भगवान् दिव्य हैं, उनके कर्म दिव्य हैं। हमारे गुरु अत्यन्त दिव्य हैं। उन्होंने हमें बताया है कि इसी माया में रहकर दिव्य धाम में पहुँचेंगे। हम मनुष्य हैं, कभी-कभी परेशान हो जाते हैं पर गुरु के सान्निध्य में रहकर सब परेशानी दूर हो जाती हैं। अपने किये कुछ नहीं होगा।

बहन कमला वर्मा जी

गीता के अध्याय 9 श्लोक 29 में भगवान् कहते हैं – **समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेषोऽस्ति न प्रियः।** अर्थात् सभी प्राणियों में मेरी दृष्टि समान है चाहे कोई मुझसे द्वेष करता हो अथवा प्रेम करता हो। मेरी सृष्टि में क्षिति, जल पावक आदि जो भी पदार्थ हैं, सबको समान रूप से प्राप्त हैं क्योंकि सभी भगवान् के अंश हैं। सूर्य एक है पर अलग-अलग स्थान पर उसकी अलग-अलग क्रिया होती है। उपरोक्त श्लोक के दूसरे पद में भगवान् कहते हैं - **ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्।** अर्थात् जो मेरा प्रेमपूर्वक भजन करते हैं, मैं उसके लिये प्रकट हो जाता हूँ।

पूज्य गुरुदेव महाराज कहते हैं – धैर्य धरो, विश्वास करो। राम नाम अपने आप में पूरा साधन है। व्रत, उपवास आदि करके शरीर को कष्ट नहीं देना चाहिए। व्रत तो नित्य का करना है – जो स्वास्थ्य के अनुकूल भोजन करे और प्रतिदिन अच्छे कर्म करे। कुछ रूढ़िवादी विचार भी बदलने चाहिए।

भगवान् ने गीता अध्याय 7 के श्लोक 15 में बताया है – जिनका ज्ञान माया के द्वारा हरा हुआ है वो मेरी शरण नहीं होते। इसके विपरीत चार प्रकार के भक्त मेरी शरण में आते हैं – आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी। कितने ही पापी ने भगवान् का आश्रय लिया, भगवान् ने उसको भी अपनाया। हमारे गुरुदेव ने इतना सरल मार्ग दिया है – धैर्य धरें, चेष्टा करें। नियमितता हमारे मार्ग में आवश्यक है। हमें जागरूक रहना है।

बहन मीरा दुबे जी

गीता के अध्याय 10 के श्लोक 9 में भगवान् ने बताया है कि जो मेरे में चित्त वाले होते हैं। एक होता है स्वयं का लगना जिसमें व्यक्ति हर समय हर किसी से भगवान् के विषय में ही बात करता है और उसी में सन्तुष्ट होता है। जब हम प्रेम से भगवान् का नाम पुकारते हैं तो मन बुद्धि और इन्द्रियाँ स्वयं ही प्रभु में लग जाती हैं। दूसरी बात है – चित्त वहीं लगता है जहाँ अपनापन होता है। जिसने यह निश्चय कर लिया है कि मैं भगवान् का हूँ, भगवान् ही मेरे हैं तो उसका स्वाभाविक प्रेम हो जाता है। तब प्रभु का मेरे ऊपर भगवान् का पूरा अधिकार हो जाता है और ऐसा भाव प्रस्फुटित होता है - **गले राम की जेवरी जित खींचे तित जाय।**

भाई अनिल मित्तल जी

बच्चे के जन्म लेते ही माता-पिता सिखाते हैं। थोड़ा बड़ा होने पर स्कूल के अध्यापक हमें गुरु बन कर सिखाते हैं जिससे वह डॉक्टर या इंजीनियर बनता है, फिर वो उसी में उलझ कर रह जाता है। सकाम इच्छा से वह प्रभु के पास जाता है। धार्मिक बाहर की यात्रा है और आध्यात्मिक अन्दर की यात्रा है। कभी-कभी जीवन में ऐसी घटना घटती है जो उसे

झकझोर देती है। कोई बड़ी घटना घटती है अध्यात्म से जोड़ने के लिये। दूसरा, अगर पारिवारिक पृष्ठभूमि आध्यात्मिक होती है तो वह व्यक्ति अध्यात्म से जुड़ता है। तीसरा, जन्म-जन्मान्तर का रिश्ता है।

गुरु का खोजना बड़ा मुश्किल कार्य है। सच्चा गुरु बाहर की यात्रा से अन्दर की यात्रा पर ले जाता है। पहला कदम है ध्यान, फिर विचार। विचार को खत्म या कम कैसे किया जा सकता है – ध्यान के द्वारा। राम नाम के जाप से धीरे-धीरे निर्विचार होता जाता है। इसका प्रयास करना पड़ता है। निर्विचार अर्थात् किसी घटना से प्रभावित न होना। गुरु की कृपा से सब हो जाता है। वो साक्षात् परमात्मा हैं, इसके बहुत उदाहरण हैं।

बहन सुशीला जायसवाल जी

गीता के अध्याय 17 में भगवान् ने तीन प्रकार के तप बताए हैं – शरीर सम्बन्धी, वाणी सम्बन्धी और मन सम्बन्धी। वाणी सम्बन्धी तप पर प्रकाश डालें तो हमारी वाणी से किसी में उद्वेग न पैदा हो। स्वाध्याय तथा अभ्यास भी वाणी का तप है। वाणी का प्रभाव तो अवश्य पड़ता है; अत: वाणी संयमित होनी चाहिए। कटु सत्य नहीं बोलना चाहिए, हितकारी झूठ अच्छा है। सभी अलग-अलग स्वभाव के होते हैं। तीन गुण होते हैं। किसी में कोई गुण अधिक है किसी में कोई। जैसा हमारा स्वाध्याय होगा वैसा ही हमारा विचार व वाणी होगी। अच्छी बातें देखने की नजर होनी चाहिए। गुण देखने चाहिए।

अभ्यास – नाम जप का अभ्यास करना चाहिए। जब भी जीवन में प्रतिकूल परिस्थिति आ जाती है तो नाम जप का सहारा लेना चाहिए। शिविर में नाम जप का अभ्यास करवाया जाता है। जप चार प्रकार का होता है – **वाचिक** - जोर से बोल कर। **उपांशु** - इसमें होठ व जीभ हिलती है। **मानसिक** - राम नाम मन में चलता है। **अजपा** - हर समय अनायास ही चलता रहता है।

बहन कान्ति सिंह जी

पूज्य गुरु महाराज ने भक्ति मार्ग बतलाया है जो बहुत ही सरल मार्ग है। इस मार्ग में कोई बालक, बड़ा, धनी, निर्धन – नाम जप तो सभी कर सकते हैं, केवल जागरूक रहना है। काम, क्रोध, लोभ, मोह धीरे-धीरे कम होते चले जाते हैं। जैसे व्यवहार की हम दूसरे से अपेक्षा करते हैं वैसा ही हम स्वयं करें। हम चाहते हैं सभी हमसे प्रेम करें तो पहले हमें प्रेम करना सीखना होगा। जो भी व्यक्ति, वस्तु हमें प्राप्त है उसका हम सदुपयोग करें। शरीर का भी सदुपयोग करें अर्थात् स्वस्थ रहें, संयमित रहें। जो भी कर्तव्य कर्म मिले हैं, उनको पूजा समझ कर ईमानदारी से खुशी-खुशी करते चले जायें तो हमारा जीवन धन्य होता चला जायेगा।

बहन उमा शुक्ल जी

हमारे स्वामी जी ने यज्ञ बताये हैं –

1. द्रव्यमय यज्ञ,
2. तपोमय यज्ञ,
3. योग यज्ञ,
4. स्वाध्याय यज्ञ,
5. ज्ञान यज्ञ

1. **द्रव्यमय यज्ञ** - यदि किसी की धन से सहायता करते हैं, धन का सदुपयोग करते हैं तो द्रव्य यज्ञ हो जाता है।
2. **तपोमय यज्ञ** - कलियुग में तप करना मतलब यदि किसी कर्तव्य पालन में कोई कष्ट मिलता है तो वह तपोमय यज्ञ हो जाता है।
3. **योग यज्ञ** - अपनी आत्मा की शुद्धि के लिये हम जो यज्ञ करते हैं, अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति को सहन करते हैं तो वह योग यज्ञ हो जाता है।

4. **स्वाध्याय यज्ञ** – जो हम गीता, रामायण आदि शिक्षाप्रद साहित्य पढ़ते हैं तो यह एक प्रकार का यज्ञ ही है।
5. **ज्ञान यज्ञ** - जो हम पढ़ते हैं उसे जब बाँटते हैं वह ज्ञान यज्ञ होता है। जो भी हमें शरीर, परिवार, धन आदि मिला है, उसका जब सदुपयोग करते हैं तो वह ज्ञान यज्ञ होता है।

पूज्य स्वामी जी कहा करते थे – अपने कल्याण की चेष्टा करते हैं तो दुर्गति नहीं होती। माँ अपने बच्चे का ध्यान रखती है तो महाशक्ति माँ हमारा कितना ध्यान रखेगी। सत्संग नित्य करना चाहिए क्योंकि **बिनु सत्संग विवेक न होई।**

बहन अरुणा पाण्डे जी

मानव जीवन में सबसे अधिक आवश्यकता गुरु की होती है। भगवान् ने मानव जीवन तो दे दिया जिसमें कर्मों के हिसाब से सुख दुःख भी मिलते ही हैं। किन्तु जब सद्गुरु मिलते हैं तब जीवन को सही दिशा मिलती है। बड़े-बड़े साधु सन्तों के जीवन को उनके गुरु ने बदल कर शीर्ष तक पहुँचाया। गोस्वामी तुलसी दास जी ने लिखा भी है – **'गुरु बिनु भव निधि तरै न कोई।'**

अब हमें अपने गुरु के विषय में अच्छे से जानना होगा। क्योंकि सन्त लिखते हैं –

जाने बिनु न होय परतीती।
बिनु परतीति होय नहिं प्रीती।

गुरु जी स्वयं कहते हैं – 'मैं उस परम सत्ता को माँ की भावना द्वारा जानता हूँ। वह महाशक्ति मेरे लिये तो दूर की सत्ता नहीं है। मैं सदैव उसमें हूँ और वह मुझमें।'

हम सब अत्यन्त भाग्यशाली हैं कि हमें साक्षात् ब्रह्मस्वरूप गुरु मिले। अतः उनकी आज्ञा का पालन करें और खूब राम नाम का जप करें।

❖ ❖ ❖

प्रेम और अहम् एक साथ नहीं रह सकते। जैसे-जैसे अहम् क्षीण होता है, वैसे-वैसे ही वास्तविक प्यार को पंख लग जाते हैं। इस प्रेम के उड़ान के रहस्य को वही जान सकता है जिसके हृदय में अहंकार की शून्यता विद्यमान रहती है। इसके लिये साधक को अनासक्त भाव से सेवकत्व का परिचय देते हुए जीव के प्रति मात्र वात्सल्य प्रदर्शित करने से बेहतर होगा कि वह स्वयं ही प्रेम की जीवन्त मूर्ति के भाव को आत्मसात कर ले। ऐसा साधक इच्छा और द्वेष जो द्वन्द्वों का जनक है उसका संहार करके संसृति के भ्रमात्मक मोह का अतिक्रमण कर जाता है। गीता अध्याय 7 श्लोक 27 में अपने सखा अर्जुन को भगवान सुझाव देते हैं जो निम्न श्लोक में निहित है –

इच्छा द्वेष समुत्थेन द्वंद्वमोहेन भारत।
सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यान्ति परंतप॥

अस्तु प्रत्येक साधक को सांसारिक द्वन्द्वों से सन्तप्त जीव के अपेक्षित सहयोग हेतु अपने हृदय को बज्र से भी अधिक कठोर बनाना होगा। तभी वास्तविक उपचार की प्रक्रिया प्रारम्भ होगी। जहाँ भी कदम लड़खड़ाये तुरन्त माँ के समक्ष नतमस्तक होकर अपेक्षित बल की गुहार लगानी चाहिए। माँ तो ममता और वात्सल्य से युक्त है। वह हर साधक की पुकार को सुनती है जो कष्ट भोगने वाले जीव हेतु प्रयत्नशील है। आशय है कि यदि किसी साधक से कोई द्वेष करे तो उसके बदले में उसे प्रीति का तोहफा (उपहार) के रूप में उसे देना चाहिए। भले ही तत्काल उसका दिल न द्रवित हो पर वह इतना सोचने हेतु बाध्य होगा कि उसके द्वारा दोषदृष्टि अपनाने से उसका कल्याण सम्भव नहीं है। साधना में द्वेष नहीं प्रत्युत प्राणी मात्र से प्रेम ही परमावश्यक है।

हरि ॐ तत् सत्

श्री गुरु पूर्णिमा साधना शिविर–2026, गाजियाबाद का विवरण

हर्ष का विषय है कि श्री गुरु महाराज की असीम कृपा से इस वर्ष पहली बार महागुन मैंशन, इंदिरापुरम, गाजियाबाद में दिनांक 29 जुलाई 2029 को गुरु पूर्णिमा के अवसर पर एक भव्य उत्सव का आयोजन किया गया। यह उत्सव एक वरिष्ठ साधक श्री रमेश चन्द्र गुप्त के तत्त्वावधान में मनाया गया। इसमें मुख्य आकर्षण भजन सन्ध्या का रहा जिसमें सभी भजन गुरु महाराज को समर्पित थे। भजन गायक बाहर से बुलाये गये थे। भजनों के मध्य में अपने गुरु महाराज की जीवनी और शिक्षाओं से उपस्थित जनता को अवगत कराया गया जिसकी सराहना सभी आगन्तुकों द्वारा की गई।

इस समारोह का आयोजन सोसाइटी के पार्टी हॉल में किया गया जिसमें लगभग 100 भाई–बहनों ने भाग लिया।

कार्यक्रम का समय सायं 6:00 से 9:00 का रहा। पूर्ति के पश्चात् भोजन प्रसाद देकर आगन्तुकों को विदा किया गया।

श्री गुरु पूर्णिमा साधना शिविर-2026, दिगोली का विवरण

दिगोली तपस्थली में गुरु-पूर्णिमा उत्सव दिनांक 26 जुलाई से 30 जुलाई 2026 तक पूर्ण उत्साह और धूम-धाम से मनाया गया। इसकी व्यवस्था हेतु श्री अजय अग्रवाल जी तथा श्री श्रीकान्त मिश्र जी 24 जुलाई को ही यहाँ आ गये थे। परमात्मा और श्री गुरु महाराज की असीम कृपा के फलस्वरूप यह उत्सव पूर्ण हर्ष और उल्लास के साथ मनाया गया। इसमें अहमदाबाद से दो, जंगलिया (नैनीताल) से एक, फर्रुखाबाद और बरेली से एक-एक तथा लखनऊ से चार – इस प्रकार विभिन्न प्रान्त और जिलों से कुल 18 साधक इस उत्सव में सम्मिलित हुए। इस कार्यक्रम की एक विशेषता यह रही कि इसमें धृति शुक्ल नामक एक पाँच वर्ष की बालिका ने अपने प्रस्तुतीकरण से सबको आकर्षित किया।

शिविर की अवधि में प्रतिदिन श्री गीता जी और श्री रामचरितमानस के पाठ के साथ-साथ मौन जाप, संकीर्तन, एकल भजन तथा रात्रि में भोजनोपरान्त गोष्ठी का आयोजन हुआ। लगभग सभी साधकों ने काव्य पाठ व चुटकुले सुनकर अपनी सहभागिता सुनिश्चित की। अन्तिम दिवस 30 जुलाई को पूर्ति के उपरान्त साधकों ने स्थानीय विद्यालय में जाकर सभी उपस्थित विद्यार्थियों को पेंसिल आदि शैक्षिक उपकरण दक्षिणा सहित प्रदान किये।

इस उत्सव में सभी साधकों के अतिरिक्त स्थानीय ग्रामवासियों, धाम के व्यवस्थापक श्री पंकज पाण्डेय, सहायक श्री खेमपाल जी देवड़ी का सहयोग भी सराहनीय रहा।

इस प्रकार श्री गुरु महाराज की कृपा से यह शिविर पूर्ण सफलता के साथ सम्पन्न हुआ।

❖ ❖ ❖

बाल शिविर-2026 का विवरण

साधना धाम हरिद्वार में दिनांक 30 मई 2026 को बाल-शिविर प्रारम्भ हुआ जिसकी पूर्ति दिनांक 3 जून 2026 प्रातः को हुई। इस शिविर में लगभग 75 बालकों तथा इतने ही वयस्कों ने भाग लिया। इस बार के शिविर में श्री अविनाश ग्रोवर किसी कारणवश उपस्थित नहीं हो पाये। उनकी अनुपस्थिति में संचालन समिति के अन्य सदस्यों ने इस कार्य को बखूबी निभाया।

इस शिविर में बीसलपुर, कानपुर, दिल्ली तथा बरेली से आये हुए बालकों ने शिविर के नियमों का पालन करते हुए सभी कार्यक्रमों में उत्साहपूर्वक भाग लिया। प्रात:काल के जाप के पश्चात योग तथा भ्रमण होता था। दोपहर 11:00 से 12:00 अथवा 12:00 से 1:00 बजे तक विभिन्न आध्यात्मिक विषयों पर प्रतियोगिता होती थी। इस कार्यक्रम में योगाभ्यास, स्वामी जी व मन्दिर से सम्बन्धित चित्रकारी, कुर्सी दौड़ तथा स्वामी जी के व्यक्तित्व से सम्बन्धित कई प्रतियोगितायें कराई गईं।

गीता क्लास में बालकों ने अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार गीता पाठ किया। जाप का आवाहन भी बालकों ने ही किया। रात्रि में शयन से पूर्व विनोद गोष्ठी होती थी जिसमें बालकों ने मनोरंजक भजन, चुटकुले, कवितायें और कहानियाँ सुनाईं जो ज्ञानवर्धक और व्यक्तित्व निर्माण में सहायक होती थीं। अच्छा प्रदर्शन करने वाले बालकों को पारितोषिक वितरित किये गये और अन्य सभी बालकों को उत्साहवर्धन के लिये प्रमाण पत्र दिये गये।

शिविर की पूर्ति के पश्चात सभी बच्चे अपने शिक्षकों तथा अभिभावकों की देखरेख में ऋषिकेश, देहरादून आदि कई स्थानों पर भ्रमण के लिये गये।

मेरी कार्य पद्धति

(पुरानी पत्रिका से - स्वामी श्री रामानन्द जी द्वारा दिनांक 11.7.1950 को लिखे पत्र का संकलन)

मैं उस परमसत्ता को माँ की भावना के द्वारा जानता हूँ। यह भावना इतनी गठी हुई है कि हिलाये हिल नहीं पाती। **'हम बालक तुम माय हमारी'** मानों मेरी नस-नस में बसा हुआ है। यदि सहज में मातृभावना स्त्रियों के प्रति जग जाती हैं तो कोई विस्मय की बात नहीं। बालकपन मेरे लिये सहज है, इसी कारण से स्त्रियाँ और बच्चे मुझसे शीघ्र ही हिलमिल जाते हैं। यह तो मेरी सामान्य भावना का परिणाम है। दूसरे स्वभावत: मैं अपने को घर के किसी एक व्यक्ति से (प्राय: किसी बच्चे से) एक कर लेता हूँ, उसकी दृष्टि से औरों को देखता और सम्बोधित करता हूँ। इससे भी कोई माँ बन जाती है कोई बहिन और कोई भैय्या। मैं घर का सा हो जाता हूँ।

वह महाशक्ति मेरे लिये तो दूर की सत्ता नहीं है। मैं तो सदैव उसमें हूँ और वह मुझमें है। जब मैं किसी माँ की गोद में सिर रखता हूँ तो वह वेग से उतर आती है उसमें और उसके द्वारा मुझमें इस प्रकार का वेगवान अवतरण, बड़ा प्रबल, स्थाई प्रभाव रखता है दूसरे व्यक्ति पर। मैं भी उस माँ की कृपा के प्रबल प्रवाह को प्रतीत करता हूँ। मेरे लिये यह साधना होती है। दूसरे व्यक्ति के लिये भी साधना होती है। दोनों के लिये माँ का आशीर्वाद होता है।

प्रेम की जगी हुई अग्नि दग्ध कर देती है कुसंस्कारों को। अनन्यता सहज में पनपती है। जो त्याग वैराग्य से हो सकता है उससे अधिक हो जाता है प्रेम भरी सेवा से। यह रास्ता निराला है इसमें सन्देह नहीं।

मोह को निकाल डालना मज़ाक नहीं है; परन्तु मोह भी जब अपने इष्ट के प्रति होता है तो वह ऊँचा उठाने वाला होता है। जब तक उसकी उपयोगिता होती है तभी तक होता है फिर वह शान्त हो जाता है। विकलता भी शान्त होनी स्वाभाविक है, मैं तो ऐसा ही समझता हूँ। परन्तु अभी मेरे पास इस बात का व्यावहारिक प्रमाण नहीं है। ज्ञान मार्ग से उदाहरण लीजिये – क्या मोक्ष की इच्छा के बिना ही आगे बढ़ा जाता है? पर मोक्ष की इच्छा भी तो इच्छा होती है और इच्छा मात्र तो हेय है ही। परन्तु मोक्ष की इच्छा ठीक समझी जाती है; क्योंकि वह क्रमश: सभी इच्छाओं को शान्त कर देती है। और अन्त में स्वत: शान्त हो जाती है। ऐसे ही है भक्त की प्रेममयी विकलता।

मैं सोचता हूँ अनेकों के लिये। मेरी प्रबल गृहस्थी है, मुझे दूसरों के दु:ख की चिन्तायें हैं। मैं सभी कुछ करता हूँ उनके लिये। मेरी अनेक बेटियाँ और बेटे हैं। बहिनें हैं। अब के मैंने दूल्हा भी बनाया है। यह सभी क्यों? इसलिये कि मैं जीता हूँ सेवा के लिये। मैं जीता हूँ दूसरों के भीतर जागृति के लिये। मैंने ऐसा ही बनाया है इसे। परन्तु यह सब करते हुये – 'मै कर्ता हूँ' ऐसा प्रतीत नहीं होता। किसी से बिलगने पर व्यथा नहीं होती। ऐसा लगता है, माँ यह प्रबल खेल कर रही है। यह यन्त्र है। और कभी यह मान भी नहीं रहता। रहती है बस मस्ती। बन्धन का भय नहीं है। पतन का डर नहीं है। कल को यह काम होता ही रहे इसकी चिन्ता नहीं है। उसके आगे कण-कण झुका है, वह चाहे जहाँ और जैसा रखे सभी नाते उसके हैं। सभी काम उसके हैं। सभी प्यार उसका है और उसी पर उँडेला जाता है। यह है वस्तु स्थिति।

मैं प्रेम को प्रभु का रूप देखता हूँ। मैं प्रेम को आत्मा की जागृति का चिह्न समझता हूँ। मैं प्रेम करने की – निर्मल दिव्य प्रेम करने की योग्यता को प्रभु की समीपता का पैमाना मानता हूँ। मैं प्रेम को

निर्मल करने वाला, प्रभु का कर देने वाला, अनन्य बना देने वाला साधन समझता हूँ। मैं उपासक हूँ, प्रेम रूपी प्रभु का। मुझे वह सगुन और निर्गुन दोनों ही दिखता और अनुभव में आया है। मैं प्रेम को वासनाओं को क्षीण करने का सुगम साधन समझता हूँ। मैं प्रेम को तप, त्याग, वैराग्य, संन्यास सबसे बड़ा प्रबल साधन समझता हूँ, प्रभु के चरणों तक पहुँचने का। विकलता प्रेम की साधना के काल में संगिनी है। भक्ति की पराकाष्टा मुझे प्रेम ही दिखता है।

क्योंकि ऐसी मेरी अनुभूति है, ऐसी मेरी धारणा है। तभी तो लोगों में सहज से प्यार जग जाता है। उस प्यार में कोई वासना तो आपने न देखी होगी। वह तो वासनाओं का विस्मरण करा देता है। हाँ मेरे प्रति एक विचित्र भावना जगती है। मैं जानता हूँ कि मैं इष्ट बनकर सामने आ जाता हूँ दूसरों के भीतर। वास्तव में यह मैं नहीं हूँ। यह तो वह होता है जो मेरे भीतर काम करता है, जो दूसरों में जागृति करता है, जिससे महाशक्ति का अवतरण होता है। वह जो सहज से सम है, शान्त है और दिव्य है। आखिर हम भगवान को किसी भाव में देखते हैं। किसी रूप का निर्माण करते हैं उस घट-घट वासी राम के लिये। वह एक तस्वीर सी आ जाती है। वह उस अनन्त चेतना के प्रवाह का मार्ग सा बनकर जुड़ जाता है साधक के साथ। यह मेरे लिये भी उतनी विस्मय की बात है जितनी औरों के लिये। मेरा कोई निजी संकल्प इस विषय में नहीं होता है। हाँ इतना जानने लगा हूँ कि जो जितना अधिक मुझे स्वीकार कर पाता है उतनी ही ऊँची चेतना का प्रवाह उसमें बह जाता है। और उतनी जल्दी ही उसका जीवन शान्त होने लगता है। उसके संस्कारों का क्षय होने लगता है। ऐसा समझता हूँ कि वह शक्ति जिस तक पहुँचने के लिये सात आसमान पार करने पड़ें यह इस यन्त्र के द्वारा पास में ही उतरी हुई मिल जाती है। तभी तो इतनी जल्दी से और प्रबल प्रभाव होता है। समर्पण का रास्ता भी तेजी से खुलने लगता है।

यह सब मैं तटस्थ भाव से लोगों के अनुभवों के आधार पर जानता हूँ। वैसे मेरी कुछ जानकारी नहीं है।

जागृति का साधन है प्यार। जब तक दूसरा व्यक्ति निःसंकोच नहीं हो जाता, मेरे प्रति उदार तथा कोमल नहीं हो जाता, चाहने पर भी मैं उसकी सेवा नहीं कर सकता। मैं अपने को असहाय प्रतीत करता हूँ। एक ही उपाय होता है कि उसका दिल पिघले। वह मुझे अपना ले। इसीलिये किसी को बेटी बनाना होता है और किसी को बेटा। किसी की दुलहन बनना पड़ता है और किसी का बेटा। यह रहस्य है सारे खेल का। इसकी प्रत्यक्ष उपयोगिता खूब प्रमाणित भी हुई है।

मैं जानता हूँ लोगों को विफलता होती है। मैं जानता हूँ लोगों के लिये अपने सभी रिश्तेदारों से अधिक प्यारा हो जाता हूँ। मैं इसमें दोष नहीं देखता। अध्यात्म का प्रतीक होकर, उस माँ का प्रतीक होकर ही मैं दूसरों के सामने आता हूँ और इस भाव में ही मुझे स्वीकार करने से आगे चला जाता है।

इस सब में मेरा निजी कुछ नहीं है। मैं तो उस खिलाड़ी के खेल को देखता हूँ जैसे और देखते हैं। खेलता वही है और वह तो अछूता रहता है। उसमें अनन्त सामर्थ्य है, अनन्त प्रेम है और अनन्त बोध है। जो प्रकट होता है वह तो नगण्य है।

अब रहा मेरा साधु भाव और मर्यादायें।

मेरी साधना और मेरी विचारधारा पुरानी साधना और विचारधाराओं से निराली है। अब तक लोगों ने जीवन से भागना सिखाया है, घर गृहस्थी को छोड़ना, साँसारिक बन्धनों को तोड़ना, काम-धाम से – प्रपंच से मुँह मोड़ना सिखाया है। मैंने तो सीखा है सभी कुछ प्रभु से स्वीकार करना। जहाँ रखा है। उसने रखा है और हमारे हित के लिये रखा है। जिधर

हमारा हित होगा उधर वह ले चलेगा। जब हम उसके होने को तैयार हैं। तो वह ले चलेगा हमें। हमें तो उस पर डालना है अपने को।

मैंने सीखा है कि संसार से भागने से आसक्ति नहीं जातीं, पैसे के त्याग से लोभ नहीं जाता, स्त्री के अदर्शन से काम नष्ट नहीं होता। यह बीमारियाँ भीतर छिप जाती हैं ऐसा करने से। इसका उन्मूलन होता है प्रभु की कृपा से, महाशक्ति के अवतरण से, ऊँची चेतना के भीतर जग जाने से यह काम क्रमशः होता है और संस्कारों का क्षय इसके लिये आवश्यक है। इसलिये जीवन की सभी अनुभूतियाँ मुझे साधना दिखती है। स्त्रियों में मुझे महाशक्ति माँ दिखती है। काम वासना को क्षय करने के लिये इस रूप को धारण किये हुये। रुपया मुझे लोभ के संस्कार की निवृत्ति का मार्ग दिखता है। प्रपंच मुझे सेवा तथा प्रेम की साधना का क्षेत्र दिखता है।

लोग कहते हैं कामिनी-कंचन बाँधते हैं, मैंने सीखा है कि काम और लोभ बाँधते हैं। बेचारी कामिनी और रुपये का दोष नहीं। प्रभु की कृपा के साथ तो यह दोनों काम और लोभ के क्षय के साधन बनते हैं। जंगल में जाकर काम क्षीण नहीं होता। गृहस्थ में रहकर होता है।

मैंने तो समूचे जीवन को ही साधना करके सीखा है, मैं जीवन से भाग कैसे सकता हूँ?

तप, त्याग तथा वैराग्य उस साधना के आदर्श हैं। यहाँ अभीप्सा की, समर्पण की, अनन्यता की, प्रेम तथा सेवा की माँग है। यहाँ माँग है सौम्यता की, पूरी तरह से प्रभु का होकर उसी के लिये जीने की। इतना विशाल अन्तर है दोनों दृष्टिकोणों में।

वहाँ पर सुस्वाद भोजन का निषेध है। वहाँ स्त्री के दर्शन का निषेध है। वहाँ पर किसी गृहस्थी के यहाँ टिकने का निषेध है साधु के लिये। साधु तप और त्याग की मूर्ति होता है उस विचार-धारा के अनुसार। इस विचार-धारा में तो वह जो उसकी शक्ति के प्रसार का प्रखर यन्त्र बना है, जिसने आपा खो दिया है, माँ में, जिसका जीवन अपने लिये नहीं दूसरों के लिये ही है, जो दूसरों की सेवा के निमित्त ही जीता है, प्रभु के प्रसाद का विवरण ही जिसके जीवन में एक बात है, जो प्रेम तथा मधुरता की मूर्ति बना है, जिसे अपने कल्याण की कामना नहीं रही वह है साधु। जो पूरी तरह से समर्पित हो चुका है महाशक्ति के हाथों में, जो यन्त्र बना खेलता है उसकी गोद में – अनवरत, वह है, साधु। बाहर का कोई बन्धन उसे साधु नहीं बनाता है।

न हीं उसे असाधु बना सकता है, कोई बाह्य बन्धन अथवा उसका अभाव। सौम्यता उसमें सहज होती है अन्यथा प्रेम कैसा।

वह जो कुछ ग्रहण करेगा प्रभु से। जो कुछ उसका है वह प्रभु का है। उसका खाना-पीना सभी प्रभु से ही है। वह किसी भी बाह्य परिस्थितियों से भागता नहीं। उसने तो सभी कुछ स्वीकार करना सीखा है। वह डरता नहीं क्योंकि डर का अर्थ है संस्कार का होना। वह तो क्षीण होने चाहिए। अस्तु, वह माँ पर निर्भर हुआ स्वच्छन्द विचरता है। वह उसकी मार्गदर्शिका ही नहीं उठा कर ले जाने वाली माँ होती है। उसका उद्धार पतन उसकी चिन्ता का विषय ही नहीं रहता। इस रास्ते का सिद्ध, साधु होता है। पूर्व की अवस्था साधना की है इतना अन्तर है विचारधाराओं का! ऐसी दशा में मैं कैसे हो सकता हूँ एक स्टैण्डर्ड साधु, जो दूसरों में तप त्याग की भावना जागृत कर सके, जो दूसरों को संयम सिखा सके, वैराग्य का उपदेश दे सके। यदि मेरे पिछले समूचे जीवन का निराकरण हो सके तभी सम्भव है कि मैं और तरह का साधु बन पाऊँ। परन्तु इसके लिये सम्भवतः कई जन्मों की आवश्यकता होगी।

इस साधना में जो त्याग होता है वह आन्तरिक और सहज है। इसमें जो वैराग्य होता है वह तो प्रभु के चरणों में अनन्यता ही होती है। इसमें जो तप

संयम है वह वो रास्ते की माँग है। प्रेम का नेममात्र है और कुछ नहीं।

मैं अपने व्यवहार में ऐसा ही हूँ। स्त्रियों के वर्तने में निःसंकोच हूँ। जैसे पुरुष वर्तते हैं वैसे स्त्रियाँ मुझसे बरत सकती है, मुझे कोई आपत्ति नहीं होती है। मुझे कोई भय नहीं लगता है। रही समाज की बात। हमारे समाज में वह पुरानी विचारधारा रग-रग में समाई है। उसी के अनुकूल हमारी मर्यादायें हैं। मेरे लिये तो साधना और आन्तरिक अध्यात्मिक, सत्य का ही एक पैमाना है। इसीलिये तो टक्कर हो जाती है। इसीलिये तो लोग निन्दा करते हैं। क्या लोक भय से भीत होकर अपना अध्यात्मिक सत्य खो दूँ? क्या जिस बात को मैं समाज के लिये अहितकर समझता हूँ उसी को समाज से डर कर करने लगूँ? मैं स्त्री और पुरुषों का इतना दूर-दूर रहना, परस्पर छूत मानता हूँ। परस्पर स्वभावतः होने वाले सम्पर्कों को स्वीकार करना ही साधना की माँग है। यदि किसी के हित की यह माँग है कि मैं अकेले में उससे मिलूँ तो मैं इसलिये न मिलूँ कि लोग क्या कहेंगे यह कैसे हो सकता है! अनावश्यक अकेलापन मैं नहीं चाहता। पर आवश्यक अनावश्यक का निर्णय समाज करेगा क्या? वहाँ यह योग्यता नहीं। वहाँ सहानुभूति भी नहीं है। मैं तो अपने को डाक्टर समझता हूँ। रोगियों का उपचार करता फिरता हूँ। वैसे ही वर्तता और स्वतन्त्रता लेता हूँ।

अनुचित प्रवाह स्वतः शान्त होते हैं और आज तक होते आये हैं। हाँ यदि हमारे सम्बन्ध में कालिमा है तो गलती है। वैसा न होना चाहिए।

यदि मेरी नीयत ठीक है, यदि मुझमें बल है और दिमाग चकरा नहीं जाता है विरोध को देखकर, यदि उस भीतर काम करने वाली शक्ति ने मुझे सँभाला है और वरत रही है; तो प्रवाह स्वतः पैदा होंगे और शान्त होंगे। उनसे दूर जाना और बिचक जाना तो मैं कायरता ही समझता हूँ। अध्यात्मिक मरण होगा वैसा करना।

समाज की दृष्टि में मैं साधु नहीं हूँ यह ठीक है और अनिवार्य है। कहाँ है आज के समाज में मेरे लिये जगह? यदि मेरी उपयोगिता नहीं तो क्यों चिपक रहा हूँ इस देह से, या इस स्थिति से? कोई भी किसी तरह से भी इस जीवन लीला को समाप्त कर दे तो मुझे तनिक भी रंज न होगा। माँ की अनुमति ही सर्वश्रेष्ठ है। एक अज़ीब चीज़ बनाये हुए माँ जिला रही है। यह अज़ब खेल है।

मैंने तो राम को सभी में देखना, उसी को प्यार करना, उसी की सेवा करना, उसी के द्वारा भीतर बाहर के खेल को देखना यही जाना है। आपा खोना ही आदर्श रहा है। प्रेम में उसे पहचाना है। उसके विशाल रूप में लीन होना सीखा है। पाया है, नहीं पाया है यह भी तो मुझे पता नहीं। पाया न पाया की चिन्ता तो नहीं रही।

न जाने माँ ने ऐसा विचित्र अटपटा मार्ग क्यों दिया है। इस नादान को।

जून सन् 1950 के स्याही देवी शिविर में, श्री स्वामी जी के स्त्री पुरुषों के प्रति सम-व्यवहार को देखकर पुराने संस्कारों के कारण कुछ साधको में बेचैनी पैदा हो गई थी। वह भाव तरंग नैनीताल में गंगा माता से टकराई। उन्होंने अपने पत्र द्वारा श्री स्वामी जी के सामने कुछ सुझाव रखे। श्री स्वामी जी ने दिनांक 11.7.1950 को अल्मोड़े से उसी पत्र के उत्तर में एक विस्तृत पत्र दिया, जिसके बारे में उन्होंने लिखा है – 'शायद जीवन में इतना बड़ा पत्र आज तक नहीं लिखा होगा।' उसी पत्र की व्यक्तिगत बातें छोड़कर उपरोक्त लेख संकलित किया गया है।

– **जयनारायण पारीक** (8.10.1954)

बेईमान की दुर्दशा

जिसका ईमान सलामत नहीं वही बेईमान कहलाता है। जिस व्यक्ति ने बेईमानी के पथ का अनुसरण किया उसका बेड़ा गर्क होना सुनिश्चित है। बेईमानी से अर्जित अर्थ अनर्थ का कारण बन जाता है। हर साधक को सदैव याद रखना चाहिए कि अर्थ के मूल में केवल अनर्थ निहित रहता है और ऐसा अर्थ जिसकी नींव में बेईमानी बसी हुई है वह व्यक्ति को मानसिक त्रासदी के जाल में ऐसे उलझा लेता है कि उससे बाहर आना असम्भव हो जाता है। इसका कुप्रभाव व्यक्ति के शरीर को छिन्न–भिन्न कर डालता है। शारीरिक और मानसिक सन्त्रास उसे आदि–व्याधि का शिकार बना डालता है। गीताकार की अनुभूति है कि (16/12) –

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान्॥

‘आशा की सैकड़ों फाँसियों से बँधे हुए मनुष्य काम क्रोध के परायण होकर पदार्थों का भोग करने के लिये अन्याय पूर्वक धन संचय करने की चेष्टा करते रहते हैं।’

तात्पर्य है कि जिस साधक ने शरीर और संसार के साथ तादात्म्य बना रखा है वह काम क्रोध के वशीभूत होकर बेईमान बनकर धन के उपार्जन को अपने जीवन का लक्ष्य बना लेता है वह सदैव के लिये जीवन में साक्षात नरक को अपने मनमानस में उतार लेता है। ऐसे व्यक्ति की दुर्दशा को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता है। इसी को स्वामी जी आध्यात्मिक पतन का मूल कारण मानते हैं। इस व्याधि से मुक्त होने की किञ्चित लालसा व्यग्र और व्यथित साधक केवल प्रभु की अहैतुकी दया से ही पा सकता है। इससे साधक में प्रायश्चित करने का भाव जागृत होने लगता है। उसे अनुभूत होने लगता है कि जो भी धन उसने संचय किया है तो कम से कम उतने धन को सेवा कार्य में होम कर देने से उसे सच्ची प्रायश्चित के यज्ञ की पूर्ण आहुति सम्पन्न करने की योग्यता मिल सकती है।

अस्तु प्रत्येक साधक को पहले तो कोई अनुचित कार्य करने के संकल्प से बचना चाहिए। सार्थक उपाय है कि ऐसे दुष्कृत्य व्याधि को उत्पन्न होते ही उसे जड़ से कुचल दिया जाये। दूसरा सहज उपाय है कि जिस अनुपात में अपराध किया गया है उसे उसी अनुपात में प्रायश्चित स्वरूप सेवा कार्य में लगा दिया जाये। कदाचित उस अपराधी व्यक्ति के पास धन नहीं है तो उसे तन मन से जिसको उसने आहत किया है उस व्यक्ति की शरण में जाकर क्षमा याचना करनी चाहिए। और जैसा उसे आदेश मिले उसे अक्षरशः मानकर आदर्श प्रायश्चित प्रस्तुत करना चाहिए। जिससे वह पाप से मुक्ति पा सके। साधना में ऐसे प्रायश्चित करने वाले साधक के जीवन में प्रभु निवास करने लगते हैं। यही है प्रायश्चित से करुणावतार प्रभु साध्य को प्राप्त करने की व्यावहारिक प्रक्रिया। हरि ॐ तत् सत्।

– हरि प्रकाश सिंह चौहान

Earn rightly, and save what you can normally without the ambition to be a multimillionaire and without the fear of being reduced to penury. This saved money if employed in productive ways, actually means service of society if it is opening up new channels of production. Capital in a capitalist society is a necessity. *(from As I Understand - Money)*

चिन्तन

मन का कार्य है चिन्तन करना। प्रतिक्षण मन किसी न किसी बात का चिन्तन करता रहता है। और मनुष्य जैसा चिन्तन करता है, वैसा ही बनता चला जाता है। श्री गीता जी में कहा गया है –

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्स्तेषूपजायते। (2.62)

विषयों का चिन्तन करते-करते वह विषयरूप बन जाता है। जैसे भृंगी द्वारा कैद किया गया कीड़ा भृंगी का चिन्तन करते-करते स्वयं भृंगी बन जाता है, इसी प्रकार भगवान् का चिन्तन करते-करते मनुष्य भगवद्-रूप बन जाता है। हम जिस प्रकार का चिन्तन करेंगे उसी प्रकार का वातावरण हमारे लिये बनता चला जायेगा। भगवान् में चित्त लगायेंगे तो हमें वैसा ही साहित्य, वैसे ही साधन, वैसा ही संग मिलता जायेगा जिनसे स्वतः ही हमें परमात्मा के मार्ग में अग्रसर होने में सहायता मिलेगी। विषय और विषयी-जगत् से अपने आप ही सम्बन्ध कटता चला जायेगा। भगवान् की ही चर्चा करेंगे तो विषयी पुरुष हमसे मिलना-जुलना बन्द कर देंगे, हमारे साथ उठना-बैठना पसन्द नहीं करेंगे और भगवद्-चर्चा करने वाले लोग हमारे पास बैठने लगेंगे।

यदि चिन्तन विषयों का करेंगे तो जितने भी धार्मिक कार्य इन्द्रियों के द्वारा करेंगे, वे सब व्यर्थ हो जायेंगे। ऐसे में हमारा मन्दिर में जाना, पूजा करना, दान करना, तीर्थ यात्रा करना, कथा वार्ता करना, सत्संग सुनना, साधु-सेवा करना, स्वाध्याय आदि करना – ये सभी कार्य केवल दिखावा मात्र अथवा ढोंग कहलायेंगे। श्री गीता जी में भगवान् ने कहा है –

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचरः स उच्यते॥
(गीता 3.6)

अर्थात् जो मूढ़बुद्धि मनुष्य इन्द्रियों को ऊपर से रोककर मन से उन इन्द्रियों के विषयों का चिन्तन करता रहता है, वह मिथ्याचारी अर्थात् दंभी कहा जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि क्रिया से अधिक चिन्तन का महत्त्व है। श्री गीता जी में यह भी कहा गया है कि –

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥
(गीता 8.6)

अर्थात् अन्तकाल में जो पुरुष मेरा स्मरण (चिन्तन) करता हुआ देह त्याग कर जाता है निश्चित रूप से मुझे ही प्राप्त करता है। गीता के अध्याय 8 के श्लोक 13 व 14 में इसी आशय की पुनरावृत्ति की गई है।

एक दृष्टान्त के माध्यम से इस विषय को और स्पष्ट किया जाता है –

काशी नगरी के एक मोहल्ले में एक सन्त रहते थे। उनके घर के ठीक सामने एक वेश्या का घर था। वह वेश्या देखती थी कि सन्त के घर में दिन भर साधु संन्यासी लोगों का आवागमन रहता था। अन्दर से कीर्तन की धुन भी सुनाई देती रहती थी। वेश्या यह सब देख-देख कर पछताती रहती थी कि सन्त कितना भाग्यशाली है और मैं कितनी अभागिन हूँ जो इस घृणित कार्य में रत हूँ। उधर वह सन्त भी वेश्या के घर विलासी लोगों का आना-जाना देखता रहता था और उनके भाग्य को सराहता था क्योंकि विषयों के आकर्षण से वह सन्त पूर्णतः मुक्त नहीं हुआ था। वह सोचता था कि लोग तो विषयों का सुख लूट रहे हैं और मैं इस सुख से वंचित रहता हूँ। एक दिन सन्त और वेश्या दोनों की मृत्यु हो गई। सन्त को लेने के लिये यम के दूत आ गये और वेश्या को लेने के लिये धर्मराज के। जब सन्त ने कहा कि मैं तो दिन भर भगवान् का भजन करता हूँ और वेश्या पाप कर्म में लगी रहती है तो यह विपरीत परिणाम क्योंकर हो रहा है। यमदूतों ने उसको बताया कि मृत्यु के समय तुम विषय-सुख का चिन्तन कर रहे थे और वेश्या भजन-सुख का। संसार का नियम है कि **अन्त मति सो गति**। उसी नियम के अनुसार आप दोनों को यथेष्ट गति प्राप्त हुई है।

ऐसा इसलिये होता है क्योंकि विषयों में आसक्ति का नाश न होने के कारण ये प्रमथन स्वभाव वाली इन्द्रियाँ यत्न करते हुए बुद्धिमान् पुरुष के मन को बलात् हर लेती हैं। जैसा कि गीता में कहा गया है –

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥ (2.59)
यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥ (2.60)

श्रीमद्भागवत में कथा आती है जड़भरत की, जिसमें महान तपस्वी राजा भरत संसार को त्यागकर मोक्ष की प्राप्ति हेतु नदी किनारे कुटिया बनाकर रहते थे किन्तु अन्त समय में एक मृगशावक का चिन्तन होने के कारण अगले जन्म में हिरण बनना पड़ा।

विचार करने की बात यह है कि किसी विशेष बात, व्यक्ति या वस्तु का चिन्तन करने का कारण क्या है। या तो चिन्तन होता है उस काम का जो हम अधिकतर समय करते रहते हैं; या हमें किसी का भय सता रहा होता है; या किसी इन्द्रिय का उसके विषय से संयोग हो जाता है; या तीन ऐषणाओं में से किसी ऐषणा से ग्रसित हैं अथवा सांसारिक वस्तुओं या व्यक्तियों में ममता का भाव है। सन्त तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में दस वस्तुयें बताई हैं जिनमें साधारणतया व्यक्ति की ममता होती है –

जननी जनक बंधु सुत दारा।
तन धन भवन सुहृद परिवारा।
सब कै ममता ताग बटोरी।
मम पद मनहिं बाँध बरि डोरी॥

इनमें से जिस व्यक्ति या वस्तु का चिन्तन अन्त समय में होगा उसी के सानिध्य में अगला जन्म होगा।

द्वेष के कारण भी घृणास्पद का चिन्तन होता है। कंस सदा भय के कारण भगवान् कृष्ण का चिन्तन करता रहता था जिसके परिणामस्वरूप मरणोपरान्त उसकी आत्मा कृष्ण में ही समा गई। यही शिशुपाल के साथ हुआ। इसी प्रकार रावण की आत्मा भगवान् राम से द्वेष के कारण उन्हीं में समा गई। इससे सिद्ध होता है कि चिन्तन में भाव की प्रधानता नहीं है, विषय या वस्तु मुख्य है।

अब प्रश्न यह है कि इन सबसे बचने का उपाय क्या है। श्री गीता जी में भगवान् ने कहा है –

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥
(6.26)

अर्थात् जिस-जिस विषय के कारण यह चंचल मन विचलित होता है उस उससे बार-बार इसे हटाकर ईश्वर की ओर लगायें। जब तक चित्त में ईश्वर प्राप्ति की तड़प जागृत नहीं होती, तब तक कोई भी सांसारिक विषय उसे सहजता से आकर्षित कर लेता है। जिस साधक ने ईश्वर प्राप्ति का दृढ़ निश्चय कर लिया है उसे चाहिए कि विषयों से दूरी बनाकर रखे, अति-आत्मविश्वास से बचे। अपनी कमजोरी को पहचान कर उसके बहकावे में न आये। धीरे-धीरे इस मार्ग पर कदम बढ़ाये, जल्दबाजी से कुछ नहीं होगा। शबरी ने राम की प्रतीक्षा में पूरी उम्र निकाल दी, अन्त में सफलता मिल ही गई। गीता में कहा गया है –

शनैः शनैरुपरमेद् बुद्धया धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्॥
(6.25)

अर्थात् क्रम-क्रम से अभ्यास करता हुआ उपरति को प्राप्त हो तथा धैर्ययुक्त बुद्धि के द्वारा मन को परमात्मा में स्थित करके और कुछ भी चिन्तन न करे।

पूज्य गुरुदेव ने कहा है कि समर्पण ही एकमात्र रास्ता है। हमारे अन्दर इतनी शक्ति नहीं है कि हम इन्द्रियों पर विजय पा सकें। यदि हम समर्पण कर देंगे तो भगवान् स्वयं ही अपनी शक्ति से हमें बचायेंगे।

– रमेश चन्द्र गुप्त 'विनीत'

सत्संग से पाइए सच्चा सुख

तुलसीदास जी ने 'श्रीरामचरितमानस' में कहा है – 'बिनु सतसंग बिबेक न होई' यानी सत्संग के बिना विवेक नहीं आता। जब तक व्यक्ति का विवेक जाग्रत नहीं होता, तब तक उसे जीवन में सच्चा सुख नहीं मिलता। सत्संग की महत्ता यज्ञ, दान, तीर्थ से भी कई गुणा अधिक मानी गई है। सन्मार्ग की ओर ले जाने वाले सत्संग से जीवन की सभी समस्याओं का निदान हो जाता है।

सत्संग संजीवनी बूटी है। इससे विवेक जाग्रत होता है। सत्संग ही वह औषधि है, जो मृतप्राय मनुष्य को भी शुभता सम्पन्न बना देती है। मनुष्य का कर्तव्य क्या है और अकर्तव्य क्या है? यह स्पष्ट विवेक केवल सत्संग से प्रकट होता है। भागवत के एकादश स्कन्ध में भगवान् नारद जी से कहते हैं –

नाहं तिष्ठामि वैकुण्ठे, योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति, तत्र तिष्ठामि नारद॥

'हे नारद! मैं यज्ञ, वेद, तीर्थ, तप और त्याग से वश में नहीं होता, किन्तु सत्संग से शीघ्र ही अपने भक्तों के अधीन हो जाता हूँ।' संसार के प्रति सभी आसक्तियाँ सत्संग नष्ट कर देता है। सत्संग से ही संयम जैसे दिव्य गुण – धैर्य, सदाचार, सेवा और स्नेह का प्राकट्य होता है। इसमें ही जीवन का वास्तविक आनन्द, दिशा और उद्देश्य समाहित है। सत्संग से जहाँ राग, द्वेष, लोभ, मोह, क्रोध जैसे दुर्गुण विलीन होते हैं, वहीं प्रेम, श्रद्धा, करुणा, त्याग और विनय जैसे श्रेष्ठ गुण विकसित होते हैं।

चित्त को निर्मल करता सत्संग – सत्संग का लाभ अक्षुण्ण है अर्थात् यह कभी समाप्त नहीं होता। अन्य सभी लाभ क्षणिक होते हैं, परन्तु सत्संग का प्रभाव आत्मिक उत्कर्ष और भगवत् प्राप्ति तक जाग्रत रहता है।

जीवन के समस्त कष्टों, भ्रमों और क्लेशों का एकमात्र समाधान सत्संग है। यह विचारों का अमृत, भावों का रस और आत्मा का पोषण है। सत्संग से चित्त में कोमलता आती है। मन में स्थिरता आती है। भावों में भगवद्संपृक्ति आती है और आत्मा को परम् शान्ति का अनुभव होता है। सत्संग ही वह महान साधन है, जिसके द्वारा धर्मशास्त्रों का ज्ञान, भगवत्-प्रेम, सेवा-भाव और चरित्र-बल प्राप्त होता है। सत्संग की बहुत महिमा है। जीवन में सत्संग को सदैव बनाये रखना चाहिए। संयम अर्थात् धैर्य, सदाचार, स्नेह और सेवा जैसे गुण सत्संग के बिना नहीं आते हैं। सत्संग में ही जीवन का वास्तविक आदन्द निहित है। जीवन का सर्वोत्तम लाभ सत्संग है। सत्संग सुगम है और इसके बिना भगवत् प्राप्ति नहीं हो सकती। भगवान् भाष्यकार ने तो सत्संग को आत्मोद्धार का मूल मन्त्र बताया है। भगवान् गौड़पादाचार्य स्पष्ट कहते हैं कि यदि सत्संग न हो, तो मनुष्य ज्ञान नहीं पा सकता और यदि ज्ञान न हो, तो वह अपने वास्तविक स्वरूप को कभी भी जान नहीं पायेगा।

सत्सत्वं हि मोक्षस्य कारणं परमं स्मृतम्।
असत्स तु न कुर्यात्बुद्धिमान्सत्यवेधिनीम्॥

अर्थात् सत्संग ही मोक्ष का परम कारण है।

विवेक और आत्मज्ञान की जाग्रति – बुद्धिमान व्यक्ति को कभी भी दु:संग नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह विवेक और सत्य के मार्ग से विचलित कर देता है। 'विवेकचूड़ामणि' में सत्संग पर विचार करते हुए आद्यगुरु भगवान् भाष्यकार ने तीन वस्तुएँ संसार में दुर्लभ बताई हैं, जो केवल ईश्वर अनुग्रह से ही प्राप्त हो सकती है। मनुष्य शरीर, मोक्ष की तीव्र इच्छा (मुमुक्षुता) तथा महापुरुषों की संगति (सत्संग) और यही मोक्ष का द्वार

है। अत: यदि दुर्लभ मानव शरीर व सत्संग प्राप्त हो भी जाये, तो उसका सार्थक उपयोग करना उससे भी अधिक दुर्लभ है, क्योंकि सत्संग से ही विवेक और आत्मज्ञान जाग्रत होता है।

सत्संग की महत्ता यज्ञ, दान, तीर्थ आदि से भी कई गुणा अधिक है। सत्संग ही हमें सन्मार्ग की ओर ले जाता है। मनुष्य को इस जीवनकाल में अपने 'अभीष्ट' का ज्ञान ही नहीं हो पाता है। वह इस माया रूपी संसार में अपनी अतृप्त कामनाओं की पूर्ति में भागता हुआ मृत्यु को प्राप्त होता है। मनुष्य जीवन का एकमात्र 'अभीष्ट' आत्मज्ञान और भगवत् प्राप्ति है। सत्संग से ही हमें इस 'अभीष्ट' की सहज अनुभूति होती है और हम भगवत् प्राप्ति के कार्य में प्रवृत्त होते हैं।

आध्यात्मिक शक्ति का विकास – सत्संग ही जीवन की सभी समस्याओं का एकमात्र निदान है। प्रभु के नाम-स्मरण तथा कीर्तन से महान आध्यात्मिक शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। अत: प्रत्येक क्षण भगवन् नाम स्मरण करते रहें, क्योंकि प्रभु के नाम का सतत और निर्बाध स्मरण मानसिक शान्ति, आत्मिक सन्तृप्ति, अंत:करण की पवित्रता और सत-चित-आनन्द प्रदान करने वाला है।

दिव्य उपलब्धियों की प्राप्ति – जीवन में अलौकिक परिवर्तन लाने हेतु एक ही मुख्य उपाय है – 'सत्संग', जिससे विचार, भावना, स्वभाव, दैनिक जीवन में आश्चर्यजनक परिवर्तन आ सकता है। हृदय में नवनीत-सी कोमलता, चित्त की अडोल स्थिरता, अलौकिक एवं रसपूर्ण भगवद्भाव, धर्मशास्त्रों का गूढ़ एवं व्यावहारिक ज्ञान, महापुरुषों के जीवन से प्रेरणाप्रद शिक्षाएं, आत्मस्वरूप का दिव्य साक्षात्कार, सेवा की शास्त्रीय प्रणाली का सुस्पष्ट बोध, संकीर्तन की भावविभोर परम्परा तथा सेवा श्रृंगार के माधुर्य में वृद्धि – ये समस्त दिव्य उपलब्धियाँ केवल और केवल सत्संग रूपी ज्ञान-सरोवर में डुबकी लगाने से ही सम्भव हैं। सत्संग से ही हमारा विवेक जाग्रत होता है और विवेक से ही मोक्ष का द्वार खुलता है।

– स्वामी अवधेशानन्द गिरि

गीता-श्रवण का अद्भुत प्रभाव, अमोघ फल

('कल्याण' पत्रिका से उद्धृत)

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद् विनिःसृता॥

गीता का ही सम्यक् प्रकार से गान करना चाहिए, अन्य शास्त्रों के विस्तार में जाने का क्या प्रयोजन; क्योंकि गीता तो स्वयं भगवान् पद्मनाभ के मुख-कमल से मकरन्द-स्वरूप उद्भूत हुई है। इस प्रकार श्री गीता जी की महिमा अनिर्वचनीय है।

भारतीय दर्शन, साहित्य तथा प्राच्य भाषाओं के प्राय: तीन दशक के पठन-पाठन में मैंने अनुभव किया कि श्रीमद्भगवद्गीता मानवमात्र को जीवन का यथार्थ पथ दिखलाने में भारतीय वाङ्मय का सर्वोपयोगी ग्रन्थ है और वह दिव्य एवं चमत्कारिक प्रभाव लिये हुए है। इसे साक्षात् अनुभव करने का मुझे 27 जुलाई सन् 1981 की रात को अवसर प्राप्त हुआ। मेरी पूज्या माता जी श्री पार्वती देवी जी, जिनकी आयु 80 वर्ष की थी, अस्वस्थ थीं। वे अनुपम आत्मबल-सम्पन्न तथा ओजस्विनी महिला थीं। अतएव अस्वस्थता के बावजूद अपनी असीम अन्त:शक्ति के कारण वे न जरा भी विचलित थीं, और न आकुल ही। जब वे लगभग 25 वर्ष की थीं, तब मेरे पूज्य पिताजी का स्वर्गवास हो गया था। तब से अब तक का उनका परम पवित्र, तपोमय जीवन रहा है।

यद्यपि वे अनाकुल थीं, पर व्याधि बढ़ती जा रही थी। वे पूरी तरह होशहवास में थीं। उन्होंने अर्धरात्रि के समय यह कहा कि अब मुझे भूमि पर शयन करा दें। शायद उन्हें मृत्यु का पूर्वाभास हो गया था। हम लोग कुछ अनुमान कर नहीं पाये थे, पर अब ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने विधिवत् सोत्साह मरण की तैयारी की थी। पिछले तीन दिनों से वे स्वेच्छापूर्वक अन्न लेना भी छोड़ चुकी थीं, केवल दही का सेवन करती थीं। उन्होंने चाय लेना एक सप्ताह पूर्व ही छोड़ दिया था।

उनके इच्छानुसार हमने शुद्ध भूमि पर शुद्ध बिछौना लगाकर उन्हें शयन करा दिया। सहसा मेरे मन में आया, माता जी को इस अन्तिम समय में समग्र गीता का श्रवण करवाया जा सके तो कितना अच्छा हो। यों मैंने उन्हें गीता सुनाने का निश्चय किया। वे उस समय पूर्ण चेतना में थीं। मैंने उन्हें सम्बोधित कर बिजली की रोशनी के सहारे उच्च स्वर से गीता के अठारहों अध्याय भली-भाँति सुनाये। बीच-बीच में उनसे कहता गया, आपको गीता सुनायी जा रही है। शब्द उनके कानों में पड़ते रहे, वे शान्ति से श्रवण करती रहीं। मैं देख रहा था, यद्यपि माता जी वेदना या पीड़ा-सूचक एक भी शब्द नहीं कह रही थीं, जो उनके असाधारण आत्मबल का परिचय था, उनकी शारीरिक पीड़ा अत्यधिक बढ़ती जा रही है, ऐसा लग रहा था। मैंने प्रभु से कामना की कि मैं ज्ञानीजनों से सुनता रहा हूँ और मानता हूँ कि गीता का दिव्य प्रभाव है। एक श्लोक भी यदि कोई अन्तिम वेला में श्रवण कर ले तो उसका कल्याण हो जाता है। माताजी ने तो पूरे 700 श्लोक श्रवण किये हैं। यदि गीता-श्रवण का कोई फल हो तो मैं यह चाहता हूँ कि या तो ये सर्वथा पीड़ामुक्त हो जायें अथवा यदि इनका आयुष्य निःशेषप्राय है तो इनकी देह और आत्मा का शीघ्र विच्छेद हो जाये, इन्हें सद्गति प्राप्त हो।

ऐसा संकल्प कर मैंने माता जी से पूछा – 'आपको गंगाजल पिलायें'। उन्होंने बड़ी श्रद्धा से कहा – 'शीघ्र पिलाओ'। गंगाजल पिलाया। कुछ देर बाद मिश्री मिला हुआ दही पिलाया। तत्पश्चात् हमने देखा, उनके शरीर तथा भावों में दिव्य शान्ति परिव्याप्त हो गयी और दो घंटे के भीतर ही उन्होंने अत्यन्त शान्त, सुस्थिर एवं निर्वेदपूर्ण स्थिति में देह त्याग कर दिया। उनके प्राणवायु का बहिर्गमन ब्रह्मरन्ध्र से हुआ। मृत्यु के पश्चात् सबको बहुत आश्चर्य हुआ। उनकी देह में असाधारण दिव्यता, द्युति एवं सुन्दरता का समावेश हो गया। अर्थी तैयार होने में लगभग नौ घण्टे लगे। उनकी देह की आभा और चमक उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। उनके अंग सर्वथा कोमल एवं मृदुल बने रहे, जबकि आमतौर पर होता यह है कि मृत्यु के बाद शरीर के अंगों में कड़ापन आ जाता है। हजारों लोगों ने उन्हें देखा। सब आश्चर्यचकित थे कि शरीर में ऐसा दिव्य परिवर्तन कैसे सम्भव हुआ!

मैंने मन-ही-मन अनुभव किया, अपने परिवार वालों, मित्रों एवं स्नेही जनों को बताया कि यह गीता सुनने का ही प्रभाव है। गीता के अद्भुत प्रभाव तथा अमोघ फल की ही यह निष्पत्ति है कि इनका दिव्यता में रूपान्तरण हो गया है।

अन्तिम समय में गीता सुनने का ही यह प्रभाव था कि मेरी माता जी की मृत्यु एक ऐसी मृत्यु हुई, जिसकी योगी भी कामना करते हैं। ब्रह्मरन्ध्र से प्राण-वायु का त्याग महान् योगियों द्वारा ही साध्य है। पर गीता का जैसा विचित्र प्रभाव हमने देखा, दीर्घकाल की योग-साधना से जो सधता है, मात्र तीन घण्टे गीता के श्रवण मात्र से वह सब सध गया।

मैं अपने को पुण्यशाली मानता हूँ, माताजी को गीता सुनाने का परम उत्तम विचार उस समय मेरे मन में आया, मेरी विद्याराधना सार्थक हो गयी।

गीता के प्रति मेरी जो आस्था थी, वह सहस्रगुणित बढ़ गयी। वास्तव में गीता परम दिव्य प्रभावशाली शास्त्र है। धर्म तथा मोक्ष दोनों की सिद्धि का यह अमोघ साधन है।

– श्री छगनलाल जी शास्त्री

जीवन से भागना नहीं, जागृत होना है आध्यात्मिकता

(The Speaking Tree से उद्धृत)

मनुष्य ने ईश्वर की खोज में आकाश की ओर देखा, पर्वतों की चोटियों पर चढ़ा, गुफाओं में मौन बैठा और मन्दिरों की घंटियों में उसे सुनने का प्रयास किया। और शायद उसने मान लिया कि जिसे वह खोज रहा है, वह उससे दूर है। यह उसकी बड़ी भूल थी, क्योंकि दूरी मिट जाये तो खोज भी समाप्त हो जाती है और केवल अनुभव ही शेष रह जाता है।

ईश्वर कोई वस्तु नहीं, जिसे पाया जा सके। वह कोई स्थान भी नहीं, जहाँ पहुँचना हो। वह जीवन की वही चेतना है, जिसके कारण हम सांस लेते है, चलते हैं. प्रेम करते है और उसी चेतना में विकसित होते हैं। लेकिन, मनुष्य ने धर्म को जीवन से अलग कर दिया है। जीवन कोई दुर्घटना नहीं, यह चेतना की एक अनवरत यात्रा है। जो व्यक्ति केवल सुख चाहता है, वह जीवन का आधा ही भाग स्वीकार करता है। यह हमेशा सुखी होने की चाहत में ही जीता है। इसके मुकाबले जो व्यक्ति दु:ख को समझने का साहस रखता है, वही जीवन की गहराइयों में उतरता है। उसे सुख और दु:ख के बीच का असली अन्तर भी समझ में आ जाता है।

बीज यदि मिट्टी के अन्धकार से डर जाये, तो वह कभी वृक्ष नहीं बन सकता। इसलिये यह मत पूछो कि ईश्वर कहाँ है। पहले यह देखो कि जीवन कहाँ नहीं है। जहाँ जीवन है, वहाँ उसकी उपस्थिति है। एक शिशु की मुस्कान में, किसी माँ की करुणा में, एक किसान के श्रम में, एक वैज्ञानिक की जिज्ञासा में, एक कलाकार की कल्पना में और एक साधक के मौन में वही एक चेतना अलग-अलग रूपों में प्रकट हो रही है। आध्यात्मिकता का अर्थ जीवन से भागना नहीं, जीवन के प्रति पूरी तरह जागृत होना है। यह संसार त्यागने का नहीं, उसे नये नेत्रों से देखने का है। जिस दिन यह दिखाई देने लगेगा कि प्रत्येक क्षण में वही एक चेतना कार्य कर रही है, उसी दिन संसार और ईश्वर के बीच का विभाजन समाप्त हो जायेगा।

तब मन्दिर केवल पत्थरों की इमारत नहीं रहेगा, पूरा आकाश मन्दिर बन जायेगा। प्रार्थना केवल शब्द नहीं रहेगी, तुम्हारा जीवन ही प्रार्थना बन जायेगा और ईश्वर कोई विश्वास नहीं रहेगा, वह तुम्हारे प्रत्यक्ष अनुभव का सत्य बन जायेगा।

– मयंक मुरारी

❖ ❖ ❖

मायाबद्ध जीव की शारीरिक तथा मानसिक कुशलता नहीं रह सकती, फिर आत्मिक कुशलता तो दूर की बात है। परन्तु मुक्त लोगों का सर्वदा ही आत्म-कुशल विद्यमान है। अत: उनकी शारीरिक कुशलता स्वत: सिद्ध है। देहधारी जीव मात्र के लिये आत्म-कुशल के विषय में जिज्ञासा करना ही मुख्य विषय है, इसके अतिरिक्त सभी गौण विषयों में परिगणित हैं।

- श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजी

20.05.26 से 21.08.26 तक के 2100/- से ऊपर दानदाताओं की सूची

साधकगण अपने दान की राशि चैक द्वारा निम्नलिखित बैंक खातों में जमा करवा सकते हैं। भुगतान को और सुविधाजनक बनाने हेतु बैंक ऑफ़ इंडिया का QR Code भी दिया जा रहा है।

Swami Ramanand Sadhna Pariwar
BANK OF INDIA,
Haridwar
A/c No.: 721010110003147
I.F.S. Code: BKID0007210

Swami Ramanand Sadhna Pariwar
HDFC BANK,
Bhoopatwala, Saptrishi Chungi, Haridwar
A/c No.: 50100537193693
I.F.S. Code: HDFC0005481

साधना धाम का PAN नम्बर AAKAS8917M है।

जो दानदाता उपरोक्त बैंक खातों में से किसी में भी सीधे जमा करते हैं वे कृपया अपना नाम, पता, आधार कार्ड व PAN CARD का PDF निम्नलिखित नम्बरों में से किसी एक पर अवश्य प्रेषित करें –

1. श्री अनिरुद्ध अग्निहोत्री - 9690187900 2. श्री रवि कान्त भण्डारी - 9872574514

– रवि कान्त भण्डारी, प्रबन्धक, साधना धाम, मोबाइल: 09872574514, 08273494285

1. हरपाल सिंह राजपूत, हरिद्वार	110000
2. काली शंकर वाजपेई, कानपुर	51000
3. गंगेश्वर प्रसाद तिवारी, अहमदाबाद	21600
4. सरस्वती विद्या मन्दिर इंटर कॉलेज, बीसलपुर	21000
5. विष्णु गौड़	21000
6. प्रतीक मित्तल, बीसलपुर	21000
7. कानपुर सत्संग, कानपुर	21000
8. सुधीर कान्त अग्रवाल, मेरठ	17100
9. मीरा, नोएडा	16000
10. अजय कुमार अग्रवाल, बरेली	11000
11. रेखा-महेश गुप्ता, दिल्ली	11000
12. विजय रतन तुली, गुरुग्राम	10000
13. इन्द्र देव शुक्ल, अहमदाबाद	10000
14. नीता सहगल, नई दिल्ली	9300
15. राजेश गुप्ता, फरीदाबाद	9000
16. कन्हैया कैटरर्स, हरिद्वार	8020
17. सूरजभान सक्सेना, कानपुर	6300
18. विष्णु अग्रवाल, बरेली	6200
19. श्रीकान्त मिश्रा, फरुखाबाद	5200
20. तिवारी	5100
21. सत्यम सिंह	5100
22. राखी और अनिरुद्ध अग्निहोत्री, रुड़की	5100
23. मैसर्स शान्ति ग्रिश उद्योग, अहमदाबाद	5100
24. पवन कुमार सिंह, जयपुर	5100
25. हरिओम अग्रवाल, मुरादाबाद	5100
26. डॉ. के.डी. सिंह-रुचि सिंह, शाहजहांपुर	5100
27. सदानन्द शुक्ला, प्रयागराज	5100
28. गोपाल जी गुप्ता (शान्त कुमार), दबौली	5100
29. अमिता अग्रवाल, दिल्ली	5100
20. प्रीति अग्रवाल, पीलीभीत	5100
31. सुभाष चन्द्र अग्रवाल, बरेली	5100
32. राज कुमार अग्रवाल, बरेली	5100
33. दीपक शर्मा, हिमाचल प्रदेश	5100
34. रीता सिंह, कानपुर	5100
35. सुषमा शर्मा, लखनऊ	5100

(20.05.2026 से 21.08.2026 तक के दानदाताओं की सूची पिछले पृष्ठ से ...)

36. मीना बिजलवाण, हरिद्वार	5000
37. प्रभाकान्त शुक्ल	5000
38. रीवा भाम्बरी, नोएडा	5000
39. दिनेश बहल, दिल्ली	5000
40. चन्दन शर्मा, गुरुग्राम	5000
41. रीता शर्मा (द्वारा चंदन शर्मा), कानपुर	5000
42. रामकृपाल कटियार, तिलहर	4100
43. संजय अग्रवाल, फरीदाबाद	3100
44. मूलचन्द सुपुत्र सरोज गोयल, सिलीगुड़ी	3100
45. मधु खुल्लर, गुरुग्राम	3100
46. हेमन्त जयसवाल, कानपुर	3100
47. राहुल भण्डारी, जालन्धर	3100
48. जवाहर नन्दराज योग, दिल्ली	3100
49. डॉ. आकांक्षा अग्रवाल, मेरठ	3100
50. मुन्नी गुप्ता धर्मपत्नी राम शंकर, बालामऊ	3100
51. विनोद कुमार खुल्लर, गाजियाबाद	3100
52. शान्ति वीर साव, मुम्बई	3000
53. पूनम जयसवाल, कानपुर	2500
54. मुनीश चन्द्र शर्मा, बरेली	2500
55. देवांश (रमेश जयसवाल), कानपुर	2500
56. माधुरी अग्रवाल, बरेली	2500
57. ज्ञानवती शुक्ला, गाजियाबाद	2500
58. अभिषेक, दिल्ली	2100
59. हरि ओम	2100
60. रश्मि	2100
61. उत्तम	2100
62. कल्पना ग्रोवर, गाजियाबाद	2100
63. प्रतीक दीक्षित, नोएडा	2100
64. नीरू भारद्वाज	2100
65. सत्यवती धर्मपत्नी प्रेम शंकर, पिलखुवा	2100
66. निधि अग्रवाल, बीसलपुर	2100
67. मधु गर्ग, हरिद्वार	2100
68. वैभव सिंह, कानपुर	2100
69. पुष्पराज सिंह (रुचि सिंह), शाहजहांपुर	2100
70. अविनाश मिश्रा, सेंथल	2100
71. हरि कालरा, कानपुर	2100
72. अतुल गुप्ता, फरीदाबाद	2100
73. सुरभि जयसवाल, कानपुर	2100
74. सरस्वती सिन्हा, तिलहर	2100
75. वेग मिश्रा, बरेली	2100
76. अंकुर अग्रवाल, मेरठ	2100
77. गणेश शंकर दीक्षित, कानपुर	2100
78. बीना गुप्ता-सोहन लाल गुप्ता, कानपुर	2100
79. सन्दीप मिश्रा, दिल्ली	2100
80. लीला गुप्ता, बेंगलुरु	2100
81. प्रेमा तिवारी, अहमदाबाद	2100
82. मोहित मित्तल, बीसलपुर	2100
83. उषा अग्रवाल, पीलीभीत	2100
84. राजेश गुप्ता-कल्पना गुप्ता, बीसलपुर	2100
85. अनिल मित्तल, बीसलपुर	2100
86. योगेश अग्रवाल, बीसलपुर	2100
87. सुरेश चन्द्र गुप्ता, कानपुर	2100
88. प्रेमलता, कानपुर	2100
89. विद्या देवी, दिल्ली	2100
90. फूला भट्ट, गाजियाबाद	2100
91. सन्दीप अग्रवाल, बरेली	2100
92. बृजमोहन गुप्ता, शाहजहाँपुर	2100
93. गुप्त दान	53022

शोक समाचार

अत्यन्त दु:ख के साथ सूचित किया जाता है कि हमारे पूजनीय 74 वर्षीय श्री जगत सिंह राजपूत जी का अचानक दिल का दौरा पड़ने से दिनांक 20 जुलाई 2026 को स्वर्गवास हो गया है।

❖ ❖ ❖

अत्यन्त दु:ख के साथ सूचित किया जाता है कि कानपुर की वरिष्ठ साधिका श्रीमती राम जानकी जी का 17 अगस्त 2026 को देहावसान हो गया है।

❖ ❖ ❖

अत्यन्त दु:ख के साथ सूचित किया जाता है कि वरिष्ठ साधक श्री सोहन लाल जी की 70 वर्षीय धर्मपत्नी श्रीमती वीना गुप्ता का दिनांक 16 जुलाई 2026 को कानपुर में आकस्मिक निधन हो गया है।

❖ ❖ ❖

पूज्य गुरुदेव से विनती है कि सभी दिवंगत आत्माओं को अपने चरण कमलों में स्थान प्रदान करें तथा उनके परिवार वालों को इस महान दु:ख को सहने की शक्ति और धैर्य प्रदान करें।

चेतावनी

'उद्धार कैसे हो?' (गीताप्रेस गोरखपुर की पुस्तक से साभार)

आप जगत् में क्या कहकर आये थे? प्रतिज्ञा भंग करना कितना बड़ा पाप है!

धन, यौवन अस्थिर है। केवल भगवत् प्रेम और भक्ति ही स्थिर है – उन्हें प्राप्त करना चाहिए। मन रूप नट को भगवत् चरण रूपी स्तम्भ पर चढ़ाते रहने से ही इसकी चंचलता मिटती है।

इस असार संसार में केवल राम-नाम ही सार है। संसार की असारता पुराने खण्डहरों और शमशानों के देखने से प्रत्यक्ष प्रतीत होती है।

समुद्र के जल में नमक, काठ में अग्नि और दूध में घी जिस प्रकार रम रहा है उसी प्रकार परमात्मा सबमें रम रहा है। उसी के नित्य ध्यान से कल्याण की प्राप्ति होती है।

आप मालिक को किसलिये भूल रहे हैं? स्त्री, पुत्र और धन किस काम आयेंगे? प्राणों के निकलने के समय कोई सहायता नहीं कर सकेगा। साथ तो शरीर भी नहीं जायेगा।

जो कुछ किया जाता है वही साथ जाता है। आप उस प्रभु से मैत्री क्यों नहीं करते? उसके समान प्रभु और प्रेमी और कौन मिलेगा? ऐसा हितैषी दूसरा कौन है?

'उमा राम सम हितु जग माहीं।
गुरु पितु मातु बन्धु कोउ नाहीं॥'

सब मतलब की मनवार करने वाले हैं। फिर आप उस प्रभु से प्रेम क्यों नहीं करते? प्रभु तो आपसे कुछ भी नहीं माँगता। केवल उसे हर समय स्मरण रखना चाहिए, उसके नाम का जप और ध्यान ही सार है, जप करने से ध्यान अपने आप होने लगता है।

आपके ये सब पदार्थ किस काम आयेंगे? एक दिन सबको मिट्टी में मिल जाना है, जो कुछ ले सकें सो शीघ्र ही ले लेना चाहिए, अमूल्य श्वासों को व्यर्थ गँवाना उचित नहीं है, फिर आपकी मर्ज़ी।

– श्रद्धेय श्री जयदयालजी गोयन्दका (सेठजी)

साधना परिवार के आगामी कार्यक्रम

हर्ष का विषय है कि पूज्य गुरुदेव की असीम कृपा से वर्ष 2026 में वार्षिक साधना शिविरों का आयोजन निम्नवत् निश्चित किया गया है।

आप सभी साधक भाई बहनों से विनम्र निवेदन है कि शिविर में सम्मिलित होकर पूज्य गुरुदेव का असीम आशीर्वाद और कृपा प्राप्त करें।

कृपया शिविर में सम्मिलित होने की सूचना 10 दिन पूर्व देने की कृपा करें। धन्यवाद।

---

1. **कानपुर साधना शिविर**

दिनांक 23 अक्तूबर 2026 से 26 अक्तूबर 2026 तक

शिविर की पूर्ति: 26 अक्तूबर 2026 को प्रातः

पूज्य गुरुदेव का भण्डारा: दोपहर 11:00 बजे से

कार्यक्रम स्थल: जे.के. मन्दिर के पीछे, सोसाइटी धर्मशाला,
पाण्डु नगर, कानपुर, उत्तर प्रदेश

सम्पर्क सूत्र: श्रीमती सुशीला जायसवाल, मोबाइल: 9322185891

2. **बीसलपुर साधना शिविर**

दिनांक 14 नवम्बर 2026 से 17 नवम्बर 2026 तक

पूज्य गुरुदेव का भण्डारा: 17 नवम्बर 2026 को प्रातः 8:00 बजे से

कार्यक्रम स्थल: श्री अग्रवाल सभा भवन, स्टेशन रोड,
बीसलपुर, जिला पीलीभीत, उत्तर प्रदेश

सम्पर्क सूत्र: 9410818880, 9456083610
श्री विष्णु कुमार गोयल, मोबाइल: 9412482706

श्री स्वामी रामानन्द जी साधना साहित्य

1.	अध्यात्म विकास	इन पुस्तकों में श्री स्वामी जी ने अपनी विकासवादी नवीनतम साधना पद्धति का विस्तार से वर्णन किया है।
2.	आध्यात्मिक साधना (प्रथम खण्ड)	
3.	आध्यात्मिक साधना (द्वितीय खण्ड)	
4.	Evolutionary Outlook on Life	
5.	Evolutionary Spiritualism	
6.	जीवन-रहस्य तथा उत्पादिनी शक्ति	काम शक्ति तथा अध्यात्म विषय पर स्वामी जी द्वारा विशद् व्याख्या
7.	गीता विमर्श	श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय 1-7 की स्वामी जी द्वारा विशद् व्याख्या
8.	व्यावहारिक साधना	पूज्य स्वामी जी द्वारा लिखित तीन लेखों – (1) साधकों के लिये, (2) दम्पत्ति के लिये, (3) माता-पिता के प्रति का संकलन
9.	कैलाश-दर्शन	पूज्य स्वामी जी ने कुछ साधकों के साथ कैलाश-पर्वत की यात्रा व परिक्रमा की थी। उस यात्रा एवं उनकी आत्मानुभूति का विशद् वर्णन
10.	गीतोपनिषद	श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय 8-18 की स्वर्गीय श्री के.सी. नैयर जी द्वारा व्याख्या
11.	हमारी साधना	श्री पुरुषोत्तम भटनागर द्वारा सम्पादित
12.	हमारी उपासना	
13.	साधना और व्यवहार	
14.	अशान्ति में	
15.	मेरे विचार	
16.	As I Understand	
17.	My Pilgrimage to Kailash	
18.	Sex and Spirituality	जीवन-रहस्य (प्रो. डा. लक्ष्मी सक्सेना द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित पुस्तकें)
19.	Our Worship	हमारी साधना
20.	Our Spiritual Sadhana Part-I	आध्यात्मिक साधना (प्रथम खण्ड)
21.	Our Spiritual Sadhana Part-II	आध्यात्मिक साधना (द्वितीय खण्ड)
22.	स्वामी रामानन्द – एक आध्यात्मिक यात्रा	स्वस्पष्ट प्रो. डा. लक्ष्मी सक्सेना
23.	पत्र-पीयूष	कु. शीला गौहरी द्वारा साधकों के नाम स्वामी जी के पत्रों का संकलन
24.	स्वामी रामानन्द-चरित सुधा	स्व. डा. कविराज नरेन्द्र कुमार एवं वैद्य श्री सत्यदेव
25.	स्वामी रामानन्द-वचनामृत	श्री जगदीश प्रसाद द्विवेदी द्वारा गुरुदेव की पुस्तकों से संकलन
26.	मेरी दक्षिण भारत-यात्रा	पूज्य सुमित्रा माँ जी द्वारा दक्षिण भारत यात्रा का रोचक वर्णन
27.	पत्तियाँ और फूल	भजन, पद, कीर्तन, आरती आदि का संकलन
28.	दैनिक आवाहन विधि	स्वामी जी की साधना प्रणाली पर आधारित – श्रीमती महेश प्रकाश
29.	Letters to Seekers	कु. शीला गौहरी एवं श्री विजय भण्डारी द्वारा साधकों के नाम स्वामी जी के अंग्रेजी पत्रों का संकलन
30.	आत्मा की ओर	
31.	जीवन विकास – एक दृष्टि	Evolutionary Outlook on Life का हिन्दी अनुवाद
32.	विकासात्मक अध्यात्म	Evolutionary Spiritualism का हिन्दी अनुवाद
33.	गुरु के प्रति निष्ठा	तेजेन्द्र प्रताप सिंह
34.	माँ की विभूति – भक्ति रस (भाग 1 से 5)	अनाम साधिका
35.	श्रीराम भजन माला	श्री सूर्यप्रसाद शुक्ल 'राम सरन'
36.	माँ का भाव भरा प्रसाद गुरु का दिव्य प्रसाद	मीरा गुप्ता
37.	पत्र-पीयूष सार	पत्र-पीयूष का संग्रहीत संस्करण
38.	गीता पाठ	
39.	गृहस्थ और साधना	
40.	प्रभु दर्शन	
41.	प्रभु प्रसाद मिले तो	
42.	गीता प्रवेशिका – हिन्दी, संस्कृत व अंग्रेजी में गीता का संग्रहीत संस्करण	रमेश चन्द्र गुप्त 'विनीत'
43.	अध्यात्म विषयक लेख	
44.	वन्दना, स्तुति, प्रार्थना तथा वैदिक सामान्य ज्ञान	
45.	Gita Vimarsh	श्री कृष्ण गोयल द्वारा गीता विमर्श का English Translation